'जाति, जमीन, जनवाद' के बारे में कुछ टिप्पणियां

भारत के कम्युनिस्ट आंदोलन में, जाति के सवाल पर पिछले कुछ वर्षों में ढेरों ऐसी बातें सामने आयी हैं जिन पर मार्क्सवादी दृष्टिकोण से विचार करना अति आवश्यक हो गया है। ये बातें भारत की वस्तुगत परिथिति के हिसाब से जायज ठहराई जा रही हैं जबकि ये मार्क्सवादी–लेनिनवादी सिद्धान्त की दृष्टि से एकदम गलत हैं। जाति के सवाल पर बातें करते हुए जनवाद, पूंजीवाद के चरित्र और उसके विकास, भूमि प्रश्न आदि के बारे में जो कहा जा रहा है वह मार्क्सवाद–लेनिनवाद की शिक्षाओं के अनुरूप नहीं है। दुर्भाग्य से, यह सब काम उन लोगों द्वारा किया जा रहा है जिनसे उम्मीद की जाती है कि वे मार्क्सवाद–लेनिनवाद–माओ विचारधारा का झण्डा बुलन्द करेंगे।

दलितों की दुर्दशा पर भावुकतापूर्ण ढंग से बात करते हुए ऐतिहासिक भौतिकवाद को भुला दिया गया है। भारत के इतिहास पर अधिकार पूर्वक चर्चा की जा रही है और डा. अम्बेडकर जैसे उदारवादी बुर्जुआ को क्रांतिकारी आंदोलन में येन–केन प्रकारेण स्थापित करने की कोशिशें भी हो रही हैं। हकीकत में भारत के इतिहास में डा. अम्बेडकर का स्थान वह भी नहीं है जो चीन के इतिहास में डा. सुन यात सेन का है। मार्क्सवाद और अम्बेडकरवाद की खिचड़ी जिस हांडी में पकाने की कोशिश की जा रही है वह मिट्टी से नहीं बालू से बनायी गयी है।

जाति के सवाल पर विचार करते हुए कुछ स्वनामधन्य मार्क्सवादी तो अपने अज्ञान का निर्लज्जतापूर्वक प्रदर्शन करते हुए सवाल उठाते हैं कि 'क्या वामपंथ ने इस प्रकार (जैसे फुले, पेरियार, अम्बेडकर,वी पी मौर्य और कांशीराम ने) इस प्रश्न को निरन्तर उठाया या संघर्ष किया'।

जाति के सवाल पर बात करते हुए अधिकांश कम्युनिस्ट क्रांतिकारियों की बात का सार है कि क्योंकि यह सवाल भूमि के प्रश्न से जुड़ा है अतः इस समस्या का समाधान ऐसी क्रांति के जरिये ही संभव है जो जमीन का पुनर्बंटवारा करे। कोई एक, समाजवादी क्रांति का नारा देते कहता है,

> '' समाजवादी राज्य देश के पैमाने पर समूची जमीन का राष्ट्रीयकरण करेगा और प्राथमिकता क्रम में जाति व्यवस्था के सबसे नीचे के पाये पर खड़े लोगों को जमीन बांटता हुआ क्रमशः ऊपर के गरीबों की तरफ जायेगा। जमीन के बंटवारे के बाद भारतीय किसान सहकारी खेती से कम्यून की यात्रा करता हुआ जनवादी क्रांति को सम्पन्न करेगा और समाजवाद की तरफ आगे बढ़ते हुए मुकम्मिल जनवाद हासिल करेगा?''

यही लोग 'जाति जमीन और जनवाद' का नारा भी उछालते रहे हैं।

उपरोक्त बातों की रोशनी में हमें इस लेख में जिन प्रश्नों पर गम्भीरतापूर्वक चर्चा करने की आवश्यकता बनती है। वे हैं–जनवाद क्या है और वर्तमान भारतीय समाज में जनवाद की स्थिति क्या है? स्वस्थ पूंजीवाद क्या है और कैसे होता है?

सामन्ती उत्पादन प्रणाली आज भारत में किस हद तक प्रचलित है? जाति व्यवस्था अधिरचना और आधार में किस हद तक बची हुयी है? वर्तमान उत्पादन प्रणाली में जाति व्यवस्था की क्या भूमिका है?

जाति और भूमि का आपसी सम्बन्ध इस समय क्या है? क्या जाति समस्या का समाधान भूमि क्रांति से जुड़ा है? क्या दलित आबादी की मुक्ति भूमि मालिकाने के रास्ते से होकर जाती है? दलित आबादी का सर्वहाराकरण ऐतिहासिक दृष्टि से प्रगतिशील है?

क्या भावी भारतीय समाजवादी राज्य के लिए जाति उन्मूलन के लिए भू वितरण करना आवश्यक होगा?

सर्वोपरि प्रश्न यह है कि वर्तमान भारतीय समाज की वस्तुगत स्थिति क्या है जिसके आधार पर यह कहा जा सके कि जाति व्यवस्था के उन्मूलन की दिशा यह होगी।

जनवाद और भारतीय समाज

कल्पना विलास के लुत्फ को छोड़कर यदि बात की जाय तो भारतीय समाज एक पूंजीवादी समाज है और उसमें भारतीय किस्म का पूंजीवादी जनवाद है। भारतीय समाज के बारे में आज इन बातों का कोई अर्थ नहीं रह गया कि यदि यहां जनवादी क्रांति हो गई होती तो 'ऐसे होता', 'ऐसा नहीं होता'। क्रांति का सवाल जैसा कि मार्क्सवादी दर्शन के आधार पर हम 'लाल सलाम' के विभिन्न अंकों में विस्तारपूर्वक रख चुके हैं कि स्पष्टतः उत्पादन सम्बन्धों का सवाल है और किसी भी समाज में विशिष्ट उत्पादन प्रणाली ही उत्पादन सम्बन्धों का निर्धारण कर रही होती है।

जाति व्यवस्था जो कि भारतीय समाज (दक्षिण एशियाई समाज को भी शामिल किया जा सकता है) की एक विशिष्ट समस्या है, अपनी उत्पत्ति की दृष्टि से प्राक् पूंजीवादी है। पूंजीवादी समाज में जाति व्यवस्था के आधार का टिके रहना सम्भव नहीं है। पूंजीवादी उत्पादन प्रणाली लाजिमी तौर पर उस आधार को नष्ट कर रही है जिस पर जाति व्यवस्था सदियों तक भारत में टिकी रही। हम पाते हैं कि भारतीय समाज में 'जिस भी तरह से' पूंजीवाद का विकास हुआ हो उसने जाति व्यवस्था के आधार को नष्ट कर दिया है।

जाति व्यवस्था का नष्ट होता आधार जाहिर तौर पर अधिरचना को भी प्रभावित करता रहा है और इसलिए जाति व्यवस्था का स्वरूप वह नहीं रहा जो आज से आधी सदी पूर्व था।

जाति व्यवस्था की वर्तमान स्थिति और उसके निकट अतीत की चर्चा करते हुए कहा जाता है कि क्योंकि भारत में 'स्वस्थ' ढंग से पूंजीवाद का विकास नहीं हुआ इसलिए यह बनी हुई है। 'स्वस्थ' ढंग का पूंजीवाद एक ऐसी मनोगत धारणा है कि जिसका वास्तविक दुनिया से कुछ लेना–देना नहीं है। क्योंकि पूंजीवाद के सबसे स्वस्थ ढंग से विकास वाले समाजों में भी वैसा जनवाद नहीं आ सका जिसकी कल्पना भारतीय समाज के लिए, 'स्वस्थ पूंजीवाद', 'सच्चा जनवाद', 'मुकम्मिल जनवाद' के पैरोकारों द्वारा प्रस्तुत की जाती है। हमें नहीं भूलना होगा कि 'आजादी, बराबरी, भाईचारा' के महान नारे को प्रस्तुत करने वाली फ्रांसीसी क्रांति भी महिलाओं को सार्विक मताधिकार नहीं दे सकी। लगभग डेढ़ सदी बाद (1944) ही फ्रांस में महिलाओं को वोट देने का अधिकार मिला।

सत्य, तथ्य और मार्क्सवादी सिद्धान्त को तिलांजली देकर जिस सच्चे जनवाद की बात की जाती है यह सिवाय भावुकतापूर्ण टुटपूंजिया जनवाद के अलावा क्या है। इस तरह के जनवाद की लेनिन ने खूब खिल्ली उड़ाई है। उन्होंने कई स्थानों पर जनवाद के सवाल पर लिखा है। कुछ बातों को हम उद्धृत कर रहे हैं ताकि उन लोगों को याद दिलाया जा सके जो जनवाद के संदर्भ में फिजूल की बातें करने के आदी हो गये हैं। लेनिन ने कहा था,

''(2) प्रथमतः, यह दलील ''सामान्यतः जनवाद'' और ''सामान्यतः अधिनायकत्व'' की अवधारणाओं को काम में लाती है और *वर्ग के सवाल* की उपेक्षा करती है। सवाल का यह *वर्गेत्तर या वर्गोपरि,* कथित राष्ट्रव्यापी रूप में प्रस्तुतीकरण समाजवाद की मूलभूत शिक्षा का, याने *वर्ग संघर्ष सम्बन्धी शिक्षा* का *मजाक उड़ाना* है ... ... क्योंकि *किसी भी सभ्य पूंजीवादी देश में ''सामान्यतः जनवाद'' नहीं पाया जाता,* वहां केवल बुर्जुआ जनवाद पाया जाता है, और सवाल यहां ''सामान्यतः अधिनायकत्व'' का नहीं, बल्कि अपना आधिपत्य कायम रखने के संघर्ष में शोषकों द्वारा किये जाने वाले प्रतिरोध पर काबू पाने के उद्देश्य से उत्पीड़कों और शोषकों पर, अर्थात बुर्जुआ वर्ग पर उत्पीड़ित वर्ग के, अर्थात सर्वहारा के अधिनायकत्व का है। ... ...

''(4) बुर्जुआ सभ्यता, बुर्जुआ जनवाद और बुर्जुआ संसदवाद के वर्ग स्वरूप की व्याख्या करते हुए सभी समाजवादी उस विचार को व्यक्त करते थे, जिसे मार्क्स और एंगेल्स ने अत्यधिक वैज्ञानिक यथासत्यता के साथ इन शब्दों में व्यक्त किया था कि *सबसे अधिक जनवादी बुर्जुआ जनतंत्र भी बुर्जुआ वर्ग द्वारा मजदूर वर्ग के, मुट्ठीभर पूंजीपतियों द्वारा मेहनतकशों के विशाल समूहों के उत्पीड़न के यंत्र* के सिवाय और कुछ नहीं है। ... ...

'' (3) उन्नीसवीं और बीसवीं शताब्दियों के इतिहास ने युद्ध से पहले ही हमें दिखा दिया था कि पूंजीवाद के अंतर्गत कुख्यात ''शुद्ध जनवाद'' का वास्तव में क्या अर्थ है। मार्क्सवादी हमेशा से कहते रहे हैं कि जितना अधिक विकसित और ''अधिक शुद्ध'' जनवाद होता है, उतना ही अधिक नग्न, तीव्र और निर्मम वर्ग संघर्ष बन जाता है और उतना ही ''अधिक शुद्ध'' पूंजी का उत्पीड़न और बुर्जुआ वर्ग का अधिनायकत्व प्रकट होता है। जनतंत्रीय फ्रांस में ड्राइफस का मुकदमा, अमरीका के स्वतंत्र और जनवादी जनतंत्र में पूंजीपतियों द्वारा भाड़े पर रखे गये और हथियारबंद किये हुए तथा हड़तालियों के विरुद्ध भेजे गये दस्तों की खूनी कार्रवाइयां– ये और ऐसे ही हजारों तथ्य इस सत्य को, जिसे छिपाने की बुर्जुआ वर्ग व्यर्थ की कोशिश करता है, प्रमाणित करते हैं कि सबसे अधिक जनवादी जनतंत्रों में वास्तव में आतंक और बुर्जुआ वर्ग के अधिनायकत्व का राज व्याप्त है और हर बार जब शोषक महसूस करते हैं कि पूंजी की सत्ता की नाव डगमगाने लगी है, तो ये खुल्लमखुल्ला सामने आ जाते हैं। ... ...

''(15) *लिंग, धर्म, वर्ग अथवा जाति के किसी भेदभाव के बिना नागरिकों की उस समानता को, जिसका सदैव और सर्वत्र बुर्जुआ जनवाद वचन देता रहा, परन्तु जिसे उसने कहीं भी क्रियान्वित नहीं किया और पूंजीवादी प्रभुत्व के कारण क्रियान्वित कर ही नहीं सकता था,* सोवियत सत्ता, अर्थात सर्वहारा अधिनायकत्व तत्काल और पूर्ण रूप से क्रियान्वित करता है, क्योंकि इसे केवल उन मजदूरों की सरकार ही क्रियान्वित कर सकती है, जिसकी उत्पादन के साधनों पर निजी स्वामित्व में और उनके बंटवारे या पुनः बंटवारे के संघर्ष में कोई दिलचस्पी नहीं है।'' (लेनिन, 'कम्युनिस्ट इण्टरनेशनल की पहली कांग्रेस में बुर्जुआ जनवाद और सर्वहारा अधिनायकत्व पर थीसिसें और रिपोर्ट' 4 मार्च 1919, पेज.220–230, ग्रन्थ–8, लेनिन की सं.र. हिन्दी में, दस खण्डों में, जोर हमारा, प्र. प्रकाशन मास्को)

लगे हाथ चलिए थोड़ी सी बात टुटपुंजिया जनवाद के बारे में भी लेनिन के मुंह से सुन ली जाय,

'' ... ... परन्तु टुटपुंजिया जनवाद कोई संयोगवश होने वाला राजनीतिक गठन नहीं है, अपवाद नहीं है, अपितु पूंजीवाद की *आवश्यक* उपज है, इसके अलावा केवल पुराने, प्राक्–पूंजीवादी, आर्थिक दृष्टि से प्रतिक्रियावादी मझौले किसान ही इस जनवाद के ''आपूर्तिकर्ता'' नहीं होते, बल्कि बड़े पैमाने के पूंजीवाद की आधार भूमि में उत्पन्न सुसंस्कृत–पूंजीवादी सहकारी समितियां, बुद्धिजीवी, आदि भी होते हैं।'' (लेनिन, 'बड़े प्रश्नों के चित्रण के लिए एक छोटी–सी तसवीर',, पेज 219, पैरा–2, वही, जोर मूल में)

लेनिन की उपरोक्त बातों की व्याख्या करने की हम कोई आवश्यकता नहीं समझते हैं। परन्तु जरा इस कल्पना विलास की लेनिन की बातों से तुलना कीजिए,

''नेहरू के समाजवाद की अन्तर्वस्तु 1944 में निर्धारित टाटा–बिड़ला योजना से पूरी तरह मेल खाती थी। यह योजना देश के बड़े पूंजीपतियों ने अपनी वर्गीय सीमाओं और उस समय की राष्ट्रीय परिस्थितियों के अनुरूप पूंजीवादी विकास के लिए बनायी थी। *देश में पूंजीवाद विकसित होने की एक अनिवार्य और बुनियादी शर्त थी, उग्र (रेडिकल) भूमि सुधार, एक मुकम्मिल भूमि क्रांति।* यह भूमि क्रांति भारत की तकदीर और तस्वीर बदल देती। उत्पादक शक्तियों के हाथ–पांव में सदियों से पड़ी बेड़ियां टूट जातीं और पूरे समाज में असीम ऊर्जा का संचार होता। इस विस्फोट के फलस्वरूप मध्ययुग का अन्त हो जाता और अर्द्ध सामन्ती, औपनिवेशिक उत्पादन प्रणाली का समूल नाश हो जाता। कृषि से दस्तकारी और उद्योग की यात्रा पूरी होती। उद्योग–धन्धों का तेजी से विकास और विस्तार होता। देहात की एक बड़ी आबादी को उद्योगों में सार्थक जीविकोपार्जन का मौका मिलता। लोगों की क्रयशक्ति बढ़ने के चलते एक विशाल बाजार पैदा होता जो औद्योगिक उत्पादन को और अधिक गति प्रदान करता। सभी हाथ सार्थक और उत्पादक कामों में लगते जिससे विपुल सामाजिक सम्पदा का निर्माण होता। इन आर्थिक बदलावों के फलस्वरूप एक नये समाज का निर्माण होता। राजनीतिक, सामाजिक, शैक्षणिक और सांस्कृतिक जीवन में नयी–नयी संस्थाओं का जन्म होता। सामाजिक जीवन की रग–रग में सही मायनों में जनवादी मूल्यों की स्थापना होती। आधा आसमान–स्त्री पूरी तरह आजाद होती। दलित समस्या और सामाजिक अन्याय का कहीं नामों निशान नहीं होता। अलगाववादी और बिखराववादी ताकतों के पनपने की जमीन ही नहीं होती। तब सच्चे अर्थों में एक सम्पन्न भारत, एक स्वाधीन और स्वावलम्बी भारत अस्तित्व में आता।'' (दिगम्बर, देश–विदेश, अंक.4, पृष्ठ. 10–11, जोर मूल में)

कल्पना विलास से पुफरसत पाकर जब वे यथार्थ की जमीन से टकराते हैं तो हतप्रभ होकर वे कह उठते हैं,

''लेकिन ऐसा कुछ भी नहीं हुआ। इनकी आंतरिक गति कमजोर बनी रही तथा उत्पादक शक्तियों की विपुल ऊर्जा और विकास की सम्भावना क्षरित होती रही। आजादी के बाद भी हमारे देश के शासकों ने एक विकलांग और विकृत पूंजीवाद का ही पोषण– संवर्धन किया जिसे गमला कैपिटलिज्म (फ्लावर पॉट पूंजीवाद) भी कह सकते हैं, क्योंकि इसकी जड़ें न तो गहराई तक जा सकीं और न विस्तार पा सकीं। (वही)

इसी किस्म की बातें जो की पूंजीवाद के विकास, पूंजीवादी क्रांतियों और जनवाद को महिमा मंडित करती हों भारत के कई क्रांतिकारी ग्रुपों के साहित्य में मिल जायेंगी। भारत के पूंजीवादी जनवाद को 'फर्जी जनवाद' (facade of Democracy) बताकर उसके बरक्स यूरोपीय जनवाद को रखने का आम चलन है। इन बातों से सिर्फ ये बातें ही स्थापित होती हैं।

(1) जनवाद के बारे में जो अवधारणायें प्रस्तुत की जा रही हैं वे गलत हैं क्योंकि जनवाद को वर्गोपरि, वर्गेत्तर दृष्टि से नहीं देखा जाना चाहिये। बुर्जुआ जनवाद के साथ बुर्जुआ तानाशाही अभिन्न रूप से, उसी प्रकार से जुड़ी है, जिस प्रकार से समाजवादी जनवाद के साथ सर्वहारा तानाशाही। 'शुद्ध', 'सच्चा', 'वास्तविक' जनवाद जैसी कोई चीज मानव जाति ने अपने इतिहास में न तो पैदा की और न करेगी। तानाशाही का अंत होते ही जनवाद का भी अंत हो जायेगा। वर्गीय समाज के मिटते ही जनवाद का कोई नामलेवा भी नहीं बचेगा। साम्यवाद के संदर्भ में 'सच्चे जनवाद' की बात सोचना मार्क्सवादी–लेनिनवादी अवधारणाओं की दृष्टि से गलत है।

(2) बुर्जुआ जनवाद और बुर्जुआ क्रांतियों की मोहग्रस्तता से बाहर आने की जरूरत है क्योंकि बुर्जुआ जनवाद और क्रांतियों ने समानता, आजादी, भाईचारा का वादा किया था उसे कभी भी पूरा नहीं किया। फ्रांस, अमेरिका, जर्मनी, ब्रिटेन का इतिहास इसका गवाह है। उपनिवेशों के साथ किया गया व्यवहार तो जगजाहिर है।

(3) बीसवीं सदी में सर्वहारा वर्ग के नेतृत्व में हुयी क्रांतियों ने और उससे पूर्व पेरिस कम्यून (1871) ने अच्छे ढंग से स्थापित किया कि मजदूर, किसान व अन्य मेहनतकश वर्गों के लिए जनवाद का प्रश्न उनकी खुद की सत्ता कायम करने से जुड़ा है। सबसे अधिक बेहतर व प्रभावी जनवाद इन वर्गों के लिए बुर्जुआ शासन में नहीं सर्वहारा शासन में ही सम्भव है।

(4) रूस की अक्टूबर क्रांति के बाद दुनिया भर के बुर्जुआ वर्ग के बारे में स्थापित लेनिनवादी अवधारणाओं के सामने आने और उनके बार–बार इतिहास द्वारा पुष्ट हो जाने के बाद, तीसरी दुनिया के बुर्जुआ वर्ग से अठारहवीं–उन्नीसवीं सदी के बुर्जुआ जनवाद की उम्मीदें पालना टुटपुंजिया जनवाद है। सर्वहारा वर्ग की पांतों में, ये निकृष्ट बातें, भ्रम फैलाने का ही काम करती हैं क्योंकि दुनिया तथा भारतीय समाज में इस टुटपुंजिया जनवाद की भौतिक जमीन मौजूद हैं। इसीलिए इस किस्म की बातें बार–बार सामने आती हैं। हमारे देश के क्रांतिकारी आंदोलन में जनवाद के संदर्भ में प्रचलित अवधारणाओं में टुटपूंजिया जनवाद का खासा योगदान है।

भारतीय समाज के बारे में हम बार–बार स्थापित करते रहे हैं कि यह एक पिछड़े किस्म का पूंजीवादी देश है। भारत में पूंजीवाद का विकास शनैः–शनैः सुधारवादी रास्ते से हुआ। आज भारत में सभी जगहों पर पूंजीवादी उत्पादन सम्बन्धों का बोल–बाला है और अब प्राक् पूंजीवादी उत्पादन सम्बन्ध अवशेष के रूप में ही मौजूद हैं। जहां तक भारतीय समाज में जनवाद का प्रश्न है वह भारतीय पूंजीवाद के अनुरूप ही हैं। भारतीय पूंजीपति वर्ग ने दुनिया भर के बुर्जुआ वर्ग की तरह ही जनवाद के सवाल पर कमोवेश वैसी ही भूमिका निभायी है। लिंग, धर्म, जाति, राष्ट्रीयता, भाषा आदि–आदि के बारे में उसने संविधान में कई वायदे किये परन्तु व्यवहार में उसने नाममात्र का ही क्रियान्वयन किया। परन्तु क्योंकि उसने व्यवहार में ऐसा नहीं किया इससे वह अर्द्ध–सामन्ती समाज या यहां मौजूद बुर्जुआ जनवाद फर्जी जनवाद नहीं हो जाता है। किसी समाज का निर्धारण उसमें मौजूद उत्पादन प्रणाली और उत्पादन सम्बन्धों से ही मुख्यतः तय होता है। महज अधिरचना पर किसी समाज का चरित्र तय करना गलत है। ऐसा करना मार्क्सवादी पद्धति को तिलांजलि देना होगा। हालांकि किसी समाज की समग्र और वास्तविक तस्वीर के लिए अधिरचना के सभी पहलुओं को नोटिस में लेना होगा। आधार और अधिरचना के बीच द्वन्द्वात्मक सम्बन्ध होते हैं और आम तौर पर आधार ही निर्णायक होता है।

जाति प्रथा का सम्पूर्ण उन्मूलन, नारियों को आजादी व बराबरी, अल्पसंख्यकों के उत्पीड़न पर रोक, प्रत्येक राष्ट्रीयता के अलग होने सहित आत्मनिर्णय का अधिकार, भाषा के आधार पर भेदभाव का खात्मा जैसे जनवादी प्रश्नों को हल करना भारत के पूंजीवाद का एजेण्डा न तो कभी था और न इन्हें बनाने की उसे आवश्यकता थी। इस मामले में उसने खोखले वायदे–इरादे ही जाहिर करने थे और उसने ऐसा ही किया। दुनिया भर में बुर्जुआ जनवाद का चरित्र कमोबेश ऐसा ही रहा है।

भारतीय समाज में मौजूद जनवादी कार्यभारों को, आज किसी किस्म की नयी या पुरानी जनवादी क्रातियां पूरा नहीं कर सकती हैं। इनमें पुरानी जनवादी क्रांति का दौर तो पिछली शताब्दी के दूसरे दशक के आते–आते ही पूरा हो चुका था। और नयी जनवादी क्राति या जनता की जनवादी क्रांति की सम्भावना भारत में मोटे तौर पर चार दशक पूर्व ही थी। इन विषयों पर 'लाल सलाम' के विभिन्न अंकों मे पहले ही पर्याप्त सामग्री आ चुकी है अतः यहां हम उन्हें दोहरा नहीं रहे हैं। संक्षेप में, भारत में जनवादी कार्यभार पर्याप्त मात्रा में बचे हुए हैं परन्तु इन्हें भावी समाजवादी क्रांति अपने शुरुआती चरण में ही, एक झटके के साथ, पूरा कर देगी। इस मामले में रूस की अक्टूबर क्रांति के बाद स्थापित हुए समाजवादी सरकार के शुरुआती कदम ही हमें काफी शिक्षा दे देते हैं।

सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि आज जनवादी क्रांति के सवाल को पेश करके अथवा उस पर जोर दे के समाजवादी क्रांति को एजेण्डे में न लेना मार्क्सवाद–लेनिनवाद की दृष्टि से वस्तुगत तौर पर बुर्जुआ वर्ग के शासन को दीर्घायु प्रदान करना है। यह चाहे–अनचाहे क्रांतिकारियों को सुधारवाद और अवसरवाद के दलदल में धकेल देता है। सर्वहारा वर्ग के प्रतिनिधि सर्वहारा वर्ग से कटकर आज जिस क्रांति का प्रयास कर रहे हैं उसका युग वस्तुतः बीत चुका हैं। इतिहास काफी आगे बढ़ चुका है। नयी–पुरानी जनवादी क्रांति की बात करना जीवाश्मों में जीवन ढूंढने सरीखा है।

सामन्ती/अर्द्ध–सामन्ती उत्पादन प्रणाली और भारतीय समाज

भारत के क्रांतिकारी आंदोलन में भारतीय समाज में पूंजीवादी उत्पादन सम्बन्धों को स्वीकारने की प्रवृत्ति पिछले दो दशकों में तेजी से बढ़ी है। सबसे अधिक जड़ सूत्रवादी भी 'किन्तु–परन्तु' के विशेषणों के साथ स्वीकारने लगे हैं कि '1947 के बाद अर्द्ध–औपनिवेशिक व अर्द्ध–सामन्ती भारत में साम्राज्यवादी वित्तीय पूंजी व देश के दलाल पूंजीपति वर्ग की पूंजी के गठजोड़ से पूंजीवाद का विकास और विस्तार हुआ है ... ...'। तथ्यतः यह बात स्वीकारने के साथ ही कहा जाने लगता है भारत में पूंजीवाद का विकास 'स्वस्थ' ढंग से नहीं हुआ। पूंजीवाद का विकास 'विकृत', 'विकलांग', 'आधा–अधूरा' आदि है।

भारत में मौजूद सभी क्रांतिकारी ग्रुप भारतीय जनता और सामन्तवाद के बीच के अंतरर्विरोध को स्वीकारते हैं। फर्क यह है कि कुछ ग्रुपों के लिए यह बुनियादी व कुछ के लिए मुख्य तो कुछ के लिए प्रमुख अंतर्विरोधों में से एक है।

उपरोक्त के साथ कुछ उल्टी गतियां भी जारी हैं। समाजवादी क्रांति की मंजिल मानने वाले एक ग्रुप ने हाल ही में अपने साहित्य में कहना शुरू किया है कि,

> *''आज के भारतीय समाज में दो बुनियादी अंतर्विरोध हैं। पहला, साम्राज्यवादी समूह (खासकर बड़े साम्राज्यवादी देश और उनमें भी अमेरिका) और शत्रु सहयोगी भारतीय पूंजीपति वर्ग के गठजोड़ के साथ भारतीय जनता का अंतर्विरोध दूसरा, सामन्तवाद के साथ भारतीय जनता का अंतर्विरोध। इनमें से पहला अन्तर्विरोध प्रधान अंतर्विरोध है जिसके समाधान से भारतीय जनता की सभी समस्याओं का समाधान होगा''।* (देश–विदेश, मार्च 07, पेज.12, जोर मूल में)

बात को आगे बढ़ाते हुए, इसी लेख में, वे आगे कहते हैं,

> ''आज सामन्तवाद और उसके अवशेषों के स्वरूप में काफी परिवर्तन हो चुका है और परिवर्तन का यह सिलसिला अभी भी जारी है। लेकिन फिर भी, भूमि सुधार भारतीय समाज की कार्यसूची पर आज भी महत्वपूर्ण स्थान रखता है। देश–काल और परिस्थिति में बदलाव के चलते इसके स्वरूप में पहले की अपेक्षा काफी भिन्नता होगी''। (वही)

इसी ग्रुप ने अभी हाल में और भी मजेदार बातें कहनी शुरू कर दी हैं। हाल में ही एक सेमिनार में प्रस्तुत इनके लेख (मूलाधार और अधिरचना में जाति व्यवस्था' के उपशीर्षक 'भारत में सामंतवाद' में कहा गया,

> ''भारत में सामंतवाद दो स्तरों पर चल रहा है–बड़ा सामन्तवाद या ऊपरी स्तर का सामंतवाद (big feudalism or feudalism from above) और छोटा सामंतवाद या निचले स्तर पर व्याप्त सामंतवाद (small feudalism or feudalism from below) बड़े सामन्तवाद का उद्भव प्राचीन भारत में ही हो गया जबकि छोटे सामन्तवाद का उद्भव बाद में हुआ। छोटे सामंतवाद का उद्भव एवं विकास उत्तरवर्ती प्राचीन काल से मध्यकाल तक होता रहा। ... ...
>
> ''बड़ा सामन्तवाद ब्रिटिश काल में ही अंग्रेजों के हाथों सैन्य और राजनीतिक शक्ति से वंचित कर दिया गया था। आजादी के बाद बड़े पूंजीपति वर्ग ने इसे आर्थिक रूप से भी वंचित कर दिया और इसका उन्मूलन हो गया।

''जाति की समस्या भारतीय सामन्तवाद से अभिन्न रूप से जुड़ी हुयी है। जाति समस्या की गहरी जानकारी के बिना सामंतवाद को नहीं समझा जा सकता है और इसका उन्मूलन नहीं किया जा सकता। ... ...

''छोटे सामंतवाद की मौजूदगी : यह मंदिरों, मस्जिदों–वक्फों, गिरजाघरों, गुरूद्वारों आदि की मौजूदगी और बड़े सामंतवाद के अन्य अवशेष; तथा जाति समस्या ये सब मिलकर आज भारतीय समाज में सामंतवाद के मौलिक अंतर्विरोध बनते हैं।''

सामन्तवाद के इस चित्रण से तो दुनिया के कई विकसित देशों में भी छोटे सामन्तवाद की उपस्थिति को सिद्ध किया जा सकता है। भारत में छोटे सामन्तवाद के वर्णन के लिए प्रसिद्ध इतिहासकार डी.डी. कौशाम्बी, रामशरण शर्मा और इरफान हबीब को साक्षी बनाया गया है। दावा किया गया है उन्होंने अपनी रचनाओं में 'छोटे सामन्तवाद' का विस्तृत वर्णन किया है। कैसी अद्‌भुत बात है कि भारतीय सामंतवाद के बारे में लिखते हुए उन्हें पता नहीं लगा कि वे 'छोटे सामन्तवाद' की चर्चा कर रहे हैं। हां! इन इतिहासकारों ने भारत में सामन्तवादी समाज व्यवस्था के जन्म, विस्तार और उसकी गहराई के सन्दर्भ में 'ऊपर से सामंतवाद' (feudalism from above) और नीचे से सामन्तवाद (feudalism from below) की पद्धति की चर्चा की है। इससे सिर्फ यह साबित होता है कि भारतीय सामन्तवाद यूरोपीय सामन्तवाद से एकदम भिन्न तरीके से आया और उसकी विशेषताओं का ध्यान रखा जाना चाहिए। परन्तु इन दो प्रक्रियाओं के आधार पर जब यह ग्रुप भारत में आज के सामन्तवाद को छोटे और बड़े में बांटता है तो यह एकदम गलत पद्धति व दृष्टिकोण अपना लेता है। भारत के सामन्तवाद का छोटे और बड़े में यह विभाजन यांत्रिक है। वैसे उपरोक्त तर्क प्रणाली के आधार पर आज भी ब्रिटेन, स्पेन, जापान, नीदरलैण्ड आदि देशों में बड़े सामंतवाद की मौजूदगी को साबित किया जा सकता है।

मार्क्सवादी राजनीतिक अर्थशास्त्र के साथ यह खिलवाड़ है और यह बताने का कष्ट नहीं करता कि आज के जोतकार और भू–स्वामी जो इनके अनुसार छोटे सामंतवाद के वर्तमान रूप हैं कैसे, किस तरह और किसका शोषण करते हैं। इनके तर्क के आधार पर तो कुछ भी साबित किया जा सकता है। सामन्ती/अर्द्ध–सामन्ती उत्पादन प्रणाली और पूंजीवादी उत्पादन प्रणाली का फर्क धूमिल हो जाता है। इस तर्क प्रणाली को यदि जीव विज्ञान में लागू कर दिया जाय तो घोंघे को चीता और चीते को घोंघा साबित किया जा सकता है। खैर! इस ग्रुप का यह बौद्धिक विकास हास्य कम दुःख ज्यादा पैदा करता है।

भारत में क्योंकर पूंजीवादी उत्पादन प्रणाली है और क्यों भारत में उत्पादन सम्बन्ध पूंजीवादी उत्पादन सम्बन्ध हैं, इस विषय पर इतने विविध कोणों से 'लाल सलाम' के विभिन्न लेखों में चर्चा की जा चुकी है कि यहां उनको रखना बिला वजह का दोहराव होगा। यहां हम इतनी ही बात रख रहे हैं कि भारत में सामन्ती/अर्द्ध सामन्ती अवशेष ही बचे हैं। जजमानी प्रथा व लगान के विभिन्न रूपों (श्रम लगान–वस्तु लगान–मुद्रा लगान) की प्रथा मृत प्रायः है। जाति आधारित पेशों की सामाजिक संरचना अपनी अंतिम सांसें गिन रही है। मजदूर अपनी श्रम शक्ति बेचने के लिए स्वतंत्र है। यह ठीक है कि सामाजिक संबंधों में जातिगत पहलू गैर आर्थिक दबाव के रूप में काम करते हैं और श्रम शक्ति के मूल्य को नीचे गिरा कर पूंजीवादी शोषण की तीव्रता को बढ़ाते हैं।

अधिरचना के राजनीतिक और सामाजिक क्षेत्रों में आधार के मुकाबले सामन्तवाद की मौजूदगी अधिक तथा असर डालने वाली है। अगर जाति व्यवस्था की चर्चा करें तो राजनीतिक क्षेत्र में औपचारिक तौर पर भारतीय पूंजीवादी राज्य कुछ भी कहे, उसके साथ ताल–मेल बिठाता है और उसे संरक्षण ही देता है। शादी–ब्याह जैसे मामलों में शहर और देहात दोनों ही जगह जाति की प्रधान भूमिका होती है। शहरों में सामाजिक सम्बन्धों में जाति भले ही गौण होती जा रही हो परन्तु देहात में जाति अभी भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती रहती है। वर्गीय गोलबंदी के स्थान पर जातीय गोलबन्दी आम बात है। खाप, पंचायतों आदि के जरिये इसकी बर्बरता जारी है। जाति के आधार पर सदियों से चली आ रही रिहायश व्यवस्था कायम है। पेय जल के स्रोतों पर कब्जेदारी, भेदभाव और इसको लेकर होने वाला जातीय संघर्ष मौजूद है। इसी तरह की कई अन्य बातें।

राज्य और उसके अधिकारियों की भूमिका जाति के आधार पर तय होती रहती है। अन्तरजातीय विवाहों को प्रोत्साहित करने की भले ही भारतीय पूंजीवादी राज्य की नीति हो परन्तु व्यवहार में वह अंतरजातीय व अन्तर धार्मिक विवाहों के मार्ग में अक्सर अवरोध ही खड़े करता है और भारी जद्दोजहद के बाद ही ऐसे जोड़ों को राज्य का संरक्षण प्राप्त हो पाता है।

इन सब तथ्यों की उपस्थिति के बावजूद इस क्षेत्र में भारी परिवर्तन आये हैं। सबसे बड़ी बात जाति व्यवस्था को जायज ठहराने वाला वैचारिक–दार्शनिक आधार पूरी तरह खंडित हो चुका है। जन्म के आधार पर श्रेष्ठता या हीनता के दर्शन विचार, मूल्यों के ध्वस्त होते ही सदियों से उत्पीड़ित जातियों में उत्पीड़क जातियों को चुनौती देने की प्रवृत्ति मुखर से मुखरतर होती गयी है। भारतीय समाज के बढ़ते पूंजीवादीकरण, उत्पीड़ित जातियों के राजनैतिक हस्तक्षेप व दलों के उदय व चुनावों में जीत, पूंजीवादी राज्य और उसके कानूनों आदि ने इसमें भूमिका निभायी है। देहात में उत्पीड़ित जातियों की बढ़ती मुखरता का जवाब उत्पीड़क जातियों ने खुले दमन से दिया। अपने खोते वर्चस्व को बरकरार रखने के लिए उसने हरियाणा में दोहना, गोहना, मिर्चपुर, बिहार में बथानी टोला, लक्ष्मणपुर बाथे व महाराष्ट्र में खैरलांजी जैसे वीभत्स काण्ड रचे। यह सत्तर के दशक से पैदा हुई एक उग्र व नई प्रवृत्ति थी। उत्पीड़ित जातियों ने इन सभी किस्म के हमलों का तीखा प्रतिरोध किया और उत्पीड़क जातियों का सदियों से चला आ रहा वर्चस्व अब एक तरह से अपनी अंतिम सांसें गिनने को मजबूर है। यहां एक और बात गौरतलब है कि हाल के दशकों में दलितों के उत्पीड़न की कार्यवाहियों में गैर सवर्ण जातियां प्रमुखता से रही हैं। इनमें से उत्पीड़न करने वाली कई जातियां तो स्वयं पहले शूद्र जातियों का हिस्सा थी। हरियाणा के हाल के वर्षों में प्रमुख दलित उत्पीड़न की घटनाओं को सवर्ण जातियों ने नहीं बल्कि पूर्व में शूद्र जाति का हिस्सा रहे जाटों ने अंजाम दिया। यही बात महाराष्ट्र के खैरलांजी की घटना में भी हुई थी। ऐसा ही हमें उत्तर प्रदेश में भी बहुतायत से दिखाई देता है।

उपरोक्त संदर्भ में हमें जेन ब्रीमेन के द्वारा अपनी पुस्तक 'आउट कास्ट लेबर इन एशिया' (out cast labour in Asia) में व्यक्त किये गये इन विचारों पर भी गौर करना चाहिए। उन्होने कहा,

''जब भी भूमि सिद्धान्ततः सभी के लिए उपलब्ध होगी, केवल तब ही लोग अपनी श्रम शक्ति दूसरों को तभी उपलब्ध करायेंगे जब गैर आर्थिक दबाव उनके ऊपर लादे जायेंगे। तथापि जब भूमि दुर्लभ वस्तु होगी दूसरे शब्दों में जब संसाधन सीमित हो जायेंगे तब दबाव गैर जरूरी हो जायेगा।'' (Jan Breman, 'out cast labour in Asia', पेज–36, पैरा–3, अनुवाद हमारा, आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस)

आइये अब वर्तमान समय में जाति और भूमि के बारे में चर्चा करें।

जाति और भूमि

जाति समस्या के केन्द्र में अधिकांश क्रांतिकारी समूह भूमि के मालिकाने को देखते हैं। वे मानते हैं क्योंकि भारत में क्रांतिकारी ढंग से भूमि सुधार लागू नहीं हुए इसलिए जाति समस्या बची हुयी है और बनी हुयी है। नव जनवादी क्रांति (अथवा एक ग्रुप द्वारा जो कि समाजवादी क्रांति की मंजिल मानता है) की मंजिल मानने वाले क्रांति के जरिये जमीन का पुनर्वितरण करेंगे और उनके अनुसार इस तरह भूमि प्रश्न हल होने के साथ ही जात व्यवस्था का आर्थिक आधार तिरोहित हो जायेगा। जात व्यवस्था का अंत हो जायेगा।

सबसे पहले हम समाजवादी क्रांति की मंजिल मानने वाले ग्रुप के बारे में बात करें। इस सवाल पर उनके विचारों को उद्धृत कर रहे हैं,

''जाति व्यवस्था का सीधा सम्बन्ध जमीन के मालिकाने से है। ... ... दलित जातियां जमीनों से वंचित रही हैं और वे जाति व्यवस्था के सबसे निचले पायदानों पर स्थित हैं। सवर्ण जातियों के पास ही जमीन की मिलकियत रही है और वे जाति व्यवस्था के ऊपरी पायदान पर स्थित हैं। ... ...

''जाति की समस्या जमीन के साथ अन्योन्याश्रित रूप से जुड़ी हुई है। ... ...

''जमीन की समस्या जनवाद के साथ जुड़ी हुई है। संविधान और भारत के सारे कानून मिलकर भी जनता को जनवाद नहीं दिला पाते। ... ...

''भूमि क्रांति को जनवादी क्रांति भी कहते हैं। ... ... भारत में मूलतः और मुख्यतः भूमि क्रांति या उग्र भूमि सुधार विफल रहा है और जमीन के मालिकाने की समस्या आज भी बनी हुई है। ...

''समाजवादी राज्य देश के पैमाने पर समूची जमीन का राष्ट्रीयकरण करेगा और प्राथमिकता क्रम में जाति व्यवस्था के सबसे नीचे के पाये पर खड़े लोगों को जमीन बांटता हुआ क्रमशः ऊपर के गरीबों की तरफ जायेगा। जमीन के बंटवारे के बाद भारतीय किसान सहकारी खेती से कम्यून की यात्रा करता हुआ जनवादी क्रांति को सम्पन्न करेगा और समाजवाद की तरफ आगे बढ़ते हुए मुकम्मिल जनवाद हासिल करेगा।'' (वही)

लगभग उपरोक्त किस्म की बातें थोड़ा सा बदले हुए रूप में अन्य ग्रुपों के दस्तावेजों में भी मिल जाती हैं। ऐसे ही एक ग्रुप अपने एक दस्तावेज में लिखता है, ''भू–सम्बन्ध ही जाति हिंसा के आधार में है इसलिए क्रांतिकारी भूमि सुधार की गम्भीर आवश्यकता है।''

इस तरह की बातों से तमाम ग्रुपों के दस्तावेज भरे पड़े हैं।

अपनी बातों को पुष्ट करने के लिए कई किस्म के तथ्य और तर्क दिये जाते हैं। हम आगे लेख में देखेंगे कि भूमि मालिकाने में तथ्यतः स्थिति क्या है। दलित जातियों के बीच वर्गीय विभाजन किस स्तर पर मौजूद है। वस्तुगत स्थिति के मूल्यांकन के बाद हम इस सवाल पर चर्चा करेंगे कि क्या क्रांतिकारी भूमि सुधार का आज कोई तर्क और औचित्य बनता है। इसी तरह से जो आबादी सर्वहारा की पांतों में शामिल हो चुकी है क्या उन्हें दुबारा से (या पहली दफा ही) भूमि का मालिकाना देना, सर्वहारा दृष्टिकोण से उचित होगा? क्या जाति व्यवस्था के खात्मे के लिए प्रस्तुत नीति और दिशा मार्क्सवादी–लेनिनवादी दृष्टिकोण से उचित है?

हम यहां अपना ध्यान मुख्यतः दलित जातियों (अनुसूचित जाति - Scheduled cast) की स्थिति पर ही केन्द्रित करेंगे। भारत सरकार के अनुसूचित आयोग तथा अन्य संस्थाओं द्वारा जारी किये गये आंकड़ों का सहारा लेंगे।

आंकड़े वर्तमान स्थिति को व्यक्त करने के स्थान पर, जिस वक्त संग्रहित किये गये होते हैं, उसे व्यक्त कर रहे होते हैं। अतः हमें कुछ तर्क और कुछ अनुमान का सहारा लेकर वर्तमान परिस्थिति को समझना होगा।

दलित जातियों के बारे में पहले कुछ सामान्य तथ्यों पर चर्चा करें।

सन् 2001 की जनगणना के अनुसार भारत में अनुसूचित जाति की आबादी 16.66 करोड़ थी जो कि कुल आबादी का 16.23% बनती है। ये आबादी मुख्यतः देश के पांच राज्यों में निवास करती है : उत्तर प्रदेश-3.51 करोड़, पश्चिम बंगाल-1.84 करोड़, तमिलनाडु - 1.18 करोड़, आंध्र प्रदेश-1.23 करोड़ और बिहार-1.13 करोड़ है। इन पांच राज्यों में देश की कुल अनुसूचित आबादी की आधे से अधिक संख्या (53.36 फीसदी) निवास करती है।

राष्ट्रीय सेम्पल सर्वे संगठन (NSSO) के 61वें राउण्ड के सर्वे के अनुसार धार्मिक आधार पर बंटवारा इस प्रकार है :

तालिका–1

धार्मिक आधार पर बंटवारा

धर्म	अन. जाति (SC)	अनु. जनजाति (ST)
बौद्ध	89.50%	7.40%
ईसाई	9.00%	32.80%
सिख	17.00%	0.90%
हिन्दु	22.20%	9.10%
गौंड	-	15.90%
जैन	-	2.60%
मुस्लिम	0.80%	0.50%

स्त्रोत : विकीपीडिया

अनुसूचित आयोग के अनुसार सामाजिक स्थिति को व्यक्त करने वाले कुछ आंकड़े इस प्रकार हैं :

* अनुसूचित जाति के 30.91 फीसदी परिवारों (household) के पास ही बिजली है जबकि गैर–अनुसूचित जाति के 61.31 फीसदी परिवारों के पास बिजली है।

* अनुसूचित जाति के 9.84 फीसदी परिवारों के पास शौचालय की सुविधा है जबकि गैर–अनुसूचित जाति के 26.76 फीसदी परिवारों के पास यह सुविधा है।

* 20 फीसदी से अधिक अनुसूचित आबादी को साफ व सुरक्षित पीने योग्य पानी उपलब्ध नहीं है।

अनुसूचित जाति में फैली गरीबी को भू–मालिकाने के आधार पर राष्ट्रीय सेम्पल सर्वे 2004-2005 में किये गये 61वें राउण्ड से भी समझा जा सकता है। यह आंकड़ा इसलिए भी महत्वपूर्ण बन जाता है कि इसमें अन्य सामाजिक समूहों से तुलना की गयी है। यहां यह ध्यान रखना होगा कि यह तालिका किसानों में फैली गरीबी को ही बताती है।

तालिका–2

किसानों में भू आकार तथा सामाजिक–धार्मिक समूह के अनुसार गरीबी का अनुपात, देहात 2004–2005

[Poverty ratios among farmer by socio-religious groups and land (possessed) size classes]

भू आकार	हिन्दु अनु. जनजाति	हिन्दु अनु. जाति	हिन्दु अन्य पिछड़ा वर्ग	हिन्दु उच्च	मुस्लिम	अन्य धर्म	कुल
भूमिहीन (Land less)	68.4	29.1	18.1	1.6	4.7	26.6	22.0
उप–सीमान्त (sub-marginal)	41.5	24.8	18.8	10.3	23.1	10.2	20.2
सीमान्त (Marginal)	34.4	21.5	17.5	6.4	19.5	17.6	18.1
छोटा (small)	33.2	18.0	12.3	6.9	12.1	16.8	14.8
मध्य–बड़ा (medium-large)	29.7	14.5	6.8	6.1	7.1	6.4	9.8
कुल	33.3	20.8	13.0	6.9	16.4	12.6	15.2

[नोट : भूमिहीन (<0.01), उप–सीमान्त (0.01-0.40), सीमान्त (0.41-1.0), छोटा (1.01-2.00), मध्य–बड़ा (>2..0) हेक्टअर]

(स्रोत:Report on conditions of Work and livilihoods in the Unorganised Sector 2007, पेज.116)

इस तालिका से स्पष्ट है कि 1 हेक्टेअर से कम जोत वाले किसानों और विशेषकर 'भूमिहीन किसानों' के अनुसूचित जनजाति व अनुसूचित जाति में गरीबी अत्यधिक है।

ग्रामीण व शहरी क्षेत्रों में अनुसूचित जाति में फैली गरीबी को राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग की एक रिपोर्ट जो ग्रामीण क्षेत्र में अनुसूचित जाति के खिलाफ होने वाले अत्याचार पर आधारित है तथा शहरी क्षेत्र में राष्ट्रीय सेम्पल सर्वे आर्गनाइजेशन की रिपोर्ट एक अन्य ढंग से खुलासा करती है। यह रिपोर्ट कृषि व गैर कृषि क्षेत्र में काम करने वाली आबादी के उस हिस्से के बारे में बताती है जो गरीबी रेखा से नीचे जीवन बसर कर रहे हैं। तालिका 3 ग्रामीण क्षेत्र, तालिका 4 शहरी क्षेत्र तथा तालिका 5 वर्ष 1993–94 से वर्ष 1999–2000 के बीच सरकार के दावों के अनुसार गरीबी रेखा के नीचे जीने वालों की संख्या में आये बदलाव को दिखलाती है।

तालिका–3

गरीबी रेखा के नीचे जीने वालों का प्रतिशत

अनुसूचित जाति व अन्य परिवार (household) (ग्रामीण)

श्रेणी	**स्व. रोजगार कृषि**		**स्वरोजगार गैर कृषि**		**कृषि मजदूर**		**गैर कृषि मजदूर**		**अन्य**		**कुल**	
वर्ष	1987-88	1993-94	1987-88	1993-94	1987-88	1993-94	1987-88	1993-94	1987-88	1993-94	1987-88	1993-94
अनु. जाति	41.21	27.71	41.6	38.19	59.77	60.00	46.49	41.44	29.98	29.00	50.07	48.14
अन्य	27.68	25.57	31.42	29.49	53.30	52.34	34.45	35.59	19.26	20.51	34.37	31.29

स्त्रोत : अनुसूचित जाति आयोग

तालिका 3 स्पष्ट तौर पर दिखलाती है कि कृषि मजदूर, गैर–कृषि मजदूर की स्थिति में इन वर्षों में कोई खास परिवर्तन नहीं आया। कृषि और गैर कृषि में स्वरोजगार करने वाली आबादी में अनुसूचित जाति तथा गैर–अनुसूचित जाति दोनों की श्रेणियों की गरीबी की रेखा के नीचे जीने वाली आबादी में कमी आयी है। देहात में अनुसूचित जाति की मजदूर आबादी जो कि खेती पर निर्भर है का दरिद्रीकरण बढ़ा है।

तालिका–4

गरीबी रेखा के नीचे जीने वालों का प्रतिशत										
अनुसूचित जाति व अन्य परिवार (शहर)										
श्रेणी	**स्व. रोजगार कृषि**		**स्वरोजगार गैर कृषि**		**कैजुअल लेबर**		**अन्य**		**कुल**	
वर्ष	1987-88	1993-94	1987-88	1993-94	1987-88	1993-94	1987-88	1993-94	1987-88	1993-94
अनु. जाति	61.48	54.6	43.69	35.28	73.45	69.48	56.84	45.00	56.84	49.90
अन्य	43.14	22.64	22.56	19.04	70.11	60.6	32.21	26	37.21	29.66
स्त्रोत : वही										

तालिका 4 से सुस्पष्ट है कि अनुसूचित जाति के कैजुअल लेबर के हालात में मामूली से ही परिवर्तन हुए हैं। कमोबेश ऐसे ही हालात गैर अनुसूचित जाति के कैजुअल लेबर की भी है। कुल शहरी आबादी के गरीबी रेखा से नीचे जीने वालों की संख्या में भी इन वर्षों में परिवर्तन बेहद मामूली है। इसी बात को एक अन्य ढंग से निम्न तालिका भी स्पष्ट करती है।

तालिका–5				
गरीबी रेखा के नीचे जीने वाली जाति व अन्यों का प्रतिशत				
1993–94 और 1999–2000				
वर्ष	कुल		अनुसूचित जाति	
	ग्रामीण	शहर	ग्रामीण	शहर
1993-94	33.2	39.09	48.11	49.48
1999-2000	27.09	23.62	35.62	38.47
स्त्रोत : वही				

दलित जातियों की सामाजिक स्थिति को उपरोक्त आंकड़े बयान कर देते हैं।

इस आधार पर कुछ सामान्य निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं :

(1) अनु. जाति की देहाती आबादी में शहरी आबादी के मुकाबले दरिद्रता अधिक है। और यह भारत के सभी सामाजिक समूहों के साथ पूरे भारत पर भी लागू होती है। जो बात गौर करने की है वह यह कि अनु. जाति में यह दरिद्रता शहर और देहात दोनों जगह राष्ट्रीय स्तर से काफी अधिक है। हाल के वर्षों में भारत के शासक वर्ग के दरिद्रता उन्मूलन के सभी दावों को जब तथ्यों की निगाह से देखा जाय तो यह सामने आता है कि गरीबी की रेखा के नीचे जीने वालों की संख्या में मामूली परिवर्तन हुए हैं। कृषि मजदूरों में गरीबी पहले के मुकाबले और बढ़ी है। यदि इन तथ्यों को बढ़ती महंगाई, प्रत्यक्ष अप्रत्यक्ष ढंग से गिरती मजदूरी और बढ़ती सामाजिक असुरक्षा और राज्य के कल्याणकारी कदमों से लगातार पीछे हटने के मद्देनजर देखा जाय तो स्थिति और भयावह हो जाती है।

(2) यह एक मिथक है कि अनु. जाति के पास जमीन नहीं है (इस विषय पर आगे विस्तार से चर्चा करेंगे)। परन्तु जमीन के मालिकाने के अनुसार सभी भू–आकार में गरीबी का आकलन किया जाय तो अनु. जाति से बुरे हालात अनु. जनजाति के सदस्यों के हैं। अनु. जाति के सदस्यों की स्थिति सीमान्त भू–आकार से नीचे तो करीब पिछड़ी जातियों के ही सदृश है। उच्च जातियों के भूमिहीनों में दरिद्रता सबसे कम है। भू–आकार के आधार पर गरीबी का देहात में अनुपात हिन्दू उच्च जातियों में कुल औसत अनुपात राष्ट्रीय औसत से भी काफी नीचे है।

(3) अनु. जाति, अनु. जनजाति, पिछड़ा वर्ग आदि सभी वर्गों तबकों की गरीबी, दरिद्रता के लिए आज पूर्णतः भारतीय पूंजीवादी व्यवस्था और उसका संकट जिम्मेदार है। कृषि व्यवस्था में छाये संकट का चरित्र अर्द्ध सामन्ती नहीं है बल्कि पूंजीवादी हैं इस संकट को गहराई और विस्तार देने में आर्थिक नवउदारवादी नीतियों ने और बड़ी भूमिका निभायी है। जाति व्यवस्था के आधार पर दलितों, अदिवासियों की दरिद्रता की व्याख्या करना वर्तमान पूंजीवादी व्यवस्था और उसके चरित्र को न समझना है। भारतीय पूंजीवादी व्यवस्था में वर्गीय ध्रुवीकरण तेजी से बढ़ता जा रहा है। गरीबी, दरिद्रता बढ़ती असमानता इस व्यवस्था के अनिवार्य परिणाम हैं।

अब यदि भूमि मालिकाने के आधार पर बात करें तो इस संदर्भ में अनुसूचित जाति आयोग की रिपोर्ट कहती है :

> ''3.12 अनुसूचित जाति की लगभग तीन चौथाई आबादी प्राथमिक तौर पर कृषि पर निर्भर है जिसमें 25.4 फीसदी खेती (cultivation) पर निर्भर है तथा 49 फीसदी खेत मजदूर है जो विभिन्न किस्म के खतरनाक शोषण जैसे बंधुआ मजदूरी, बच्चों को काम पर भेजना, काम की तलाश में विभिन्न स्थानों पर भटकना आदि के शिकार होते हैं। वर्ष 1990–91 में कुल परिचालित जोतों (holding operated) की संख्या में से अनुसूचित जाति के पास 12.6 फीसदी थे जो कि वर्ष 1985-86 में 12.4 फीसदी थे। यह 11.5 फीसदी की बढ़ोत्तरी दिखाता है। जबकि 1985-86 के मुकाबले कुल परिचालित जोतों में 1990-91 में 4.2 फीसदी की वृद्धि हुई है। अनुसूचित जाति की परिचालित जोतों में 1985-86 से 1990-91 के बीच अनुसूचित जनजाति के मुकाबले अधिक की वृद्धि हुई है।''
> (वही)

इसी बात को तालिका–6 स्थापित करती है। तालिका–6 से यह महत्वपूर्ण बात सामने आती है कि यह कहना कि दलित जातियों का भूमि पर मालिकाना बिलकुल भी नहीं रहा है, गलत है।

तालिका–6							
भारत में सामाजिक समूहों द्वारा प्रचालित जोतों की संख्या तथा क्षेत्रफल							
वर्ष 1985–86 और 1990–1991							
क्रमांक	सामाजिक समूह	प्रचालित जोतों की संख्या (number of holdings) (हजार में)			प्रचालित क्षेत्र (area operated) (हजार हेक्टेअर में)		
		19985-86	1990-91	प्रतिशत में बदलाव	19985-86	1990-91	प्रतिशत में बदलाव
1	अनुसूचित जाति	12041	13422	11.15	12639	13173	4.2
		(12.4)	(12.6)		(7.7)	(8.0)	
2	सभी समाजिक समूह	97155	106637	9.8	164562	165507	0.6
		(100.0)	(100.0)		(100.0)	(100.0)	
स्त्रोत : वही, तालिका–4							

हमारा क्रांतिकारी आंदोलन तथ्यों के आधार पर निष्कर्ष निकालने के स्थान पर सहजबोध से काम चलाता है। और उससे भी अधिक यह है कि इन निष्कर्षो का आधार मनगढ़न्त है और ये बातें इस हद तक स्वयंसिद्ध मानी जाती हैं कि तथ्यों को अपनी बातों की पुष्टि के लिए पेश करने की आवश्यकता भी नहीं समझी जाती है। ऐसे में और कुछ नहीं होता है बल्कि अनुसूचित जाति/जनजाति या पिछड़े वर्ग में मौजूद वर्गीय विभाजन धूमिल हो जाता है। क्रांति की मंजिल के निर्धारण में इससे गलत समझदारी बनती है। और इसलिए यह कहा जाता है कि जाति समस्या का समाधान क्रांतिकारी भूमि सुधार में है, कि उसमें बिना वर्ग का ख्याल किये सभी को भूमि वितरित की जायेगी।

तालिका–6 के आंकड़े यद्यपि दो दशक पुराने हैं परन्तु ये दिखलाने को पर्याप्त हैं कि अनुसूचित जाति में प्रचालित जोतों की संख्या के साथ प्रचालित क्षेत्र में भी वृद्धि हुई है। हालांकि यह वृद्धि बेहद मामूली है। तालिका यह भी स्पष्ट कर देती है कि अन्य सामाजिक समूहों में यह वृद्धि अनुसूचित जाति के मुकाबले और भी कम रही है। प्रचालित जोत क्षेत्र में वृद्धि नगण्य है। अनुसूचित आयोग की रिपोर्ट कहती है,

> ''3.15 अनु.जाति के सम्बन्ध में प्रचालित क्षेत्र (operated are) वर्ष 1985-86 के 12.64 मिलियन हेक्टेअर से वर्ष 1990-91 में बढ़कर 13.17 मिलियन हेक्टेअर हो गया तो दूसरी तरफ 'अन्य' सामाजिक समूहों के लिए प्रचालित क्षेत्र वर्ष 1985-86 के 134.69 मिलियन हेक्टेअर से घटकर वर्ष 1990-91 में 134.43 मिलियन हेक्टेअर हो गया। जोत का औसत आकार (average size of holdings) अनु. जाति के लिए 0.35 हेक्टेअर था, अन्य सामाजिक समूहों के लिए यह 0.39 हेक्टेअर था। आगे वर्ष 1990 -91 में अनु. जाति के जोत आकार जहां छोटा, अर्द्ध–मध्य, मध्य जोत आकार के लिए स्थिर तथा सीमान्त में घटा (0.35 हेक्टेअर) जबकि बड़े आकार में बढ़ोत्तरी (16.7 हेक्टेअर) हुई।'' (वही, अनुवाद हमारा)

हमारा कहना यह नहीं है कि अनुसूचित जाति के पास में जमीन बड़ी मात्रा में है या उसमें लगातार वृद्धि हो रही है। हमारा कहना महज यह है कि अनुसूचित जाति की स्थिति में अन्यों की तरह ही वर्गीय बंटवारा मौजूद है। तालिका . 7 इस बात को स्थापित करती है कि अनुसूचित जाति के बीच भू–आकार के मालिकाने के अनुरूप बंटवारा मौजूद है।

तालिका–7									
भारत में सभी सामाजिक समूहों के प्रमुख आकार वर्ग की प्रचालित क्षेत्र का वितरण (हजार में)									
क्रमांक	प्रमुख आकार वर्ग	सामाजिक समूह							
		अनुसूचित जाति		अनुसूचित जनजाति		अन्य		सभी सामाजिक समूह	
		1985-86	1990-91	1985-86	1990-91	1985-86	1990-91	1985-86	1990-91
1	सीमान्त (Marginal)	3000	3409	1512	1839	17530	19646	22042	24894
		(23.7)	(25.9)	(8.8)	(10.3)	(13.0)	(14.6)	(13.4)	(15.0)
2	छोटा (Small)	2713	3010	2563	2996	20432	22821	25708	28827
		(21.5)	(22.8)	(14.9)	(16.7)	(15.2)	(17.0)	(15.6)	(17.4)
3	अर्द्ध मध्यम (Semi medium)	2878	2944	4225	4635	29563	30796	36666	38375
		(22.8)	(22.4)	(24.5)	(25.9)	(21.9)	(22.9)	(22.3)	(23.2)
4	मध्यम (Medium)	2636	2492	5570	5550	38938	36710	47144	44752
		(20.8)	(18.9)	(32.3)	(31.0)	(28.9)	(27.3)	(28.6)	(27.0)
5	बड़ा (Large)	1413	1319	3365	2888	28224	24452	33002	28659
		(11.2)	(10.0)	(19.5)	(16.1)	(21.0)	(18.1)	(20.1)	(17.3)
6	सभी आकार वर्ग	12639	13173	17234	17909	134689	134425	164562	165507
		(100.0)	(100.0)	(100.0)	(100.0)	(100.0)	(100.0)	(100.0)	(100.0)
स्त्रोत : वही, तालिका–5									

सीमान्त, छोटा आदि आकार के जोतों के संदर्भ में यह रिपोर्ट कहती है,

'' 3.17 सीमान्त, छोटा, अर्द्ध–मध्यम, मध्यम और बड़े आकार वर्ग के लिए औसत जोत आकार क्रमशः 0.40हे., 1.42 हे., 2.73 हे., 5.84 हे. था। कुल मिलाकर औसत प्रति जोत आकार 1.41हे. तक था।'' (वही, अुनवाद हमारा)

तालिका 7 पर गौर करें तो पायेंगे कि अनु. जाति में वर्ष 1990–91 में करीब 71 फीसदी के पास 2.73 हेक्टेअर से कम भूमि है। बड़े आकार में तो यह महज 10 फीसदी है। सबसे अधिक (25.9 फीसदी) तो सीमान्त किसान हैं। अनुसूचित जन जाति के मामले में मध्यम और अर्द्ध मध्यम मिलाकर लगभग 57 फीसदी बन जाता है। अन्य सामाजिक समूहों की भी कमोबेश यही स्थिति है। 1990–91 में बड़े आकार में सबसे बड़ा हिस्सा गैर अनुसूचित जाति व जनजाति के पास था।

ये आंकड़े इस बात को तो स्थापित करते हैं कि भूमि के आकार वर्ग के अनुसार सबसे बुरी स्थिति में अनुसूचित जाति के सदस्य हैं और बेहतर स्थिति में अन्य जातियों के सदस्य हैं। परन्तु इस तरह से विश्लेषण करने में सबसे बड़ी कमजोरी यह है कि यह वर्गीय विश्लेषण को त्याग देता है। और जातिगत विश्लेषण वर्गीय लामबंदी में अवरोध बन जाता है।

तालिका .8 बतलाती है कि 1980- 81 से 1990-91 के बीच सभी सामाजिक समूहों में भू–जोतों की संख्या मे वृद्धि हुयी है। परन्तु भू–जोत का औसत आकार सभी समूहों में घटता चला गया है। अनु. जाति के लिए जहां इसका औसत आकार 1980-81 में 1.15 हेक्टेअर था, यह 1990-91 में घटकर 0.98 हेक्टेअर रह गया। यही रिपोर्ट एक स्थान पर बताती है कि 1995-96 में यह घटकर 0.91 हेक्टेअर रह गया। 1995-96 में सभी सामाजिक समूहों में इसका औसत आकार 1.41 हेक्टेअर था। जबकि 1980-81 में सभी सामाजिक समूहों के लिए इसका औसत आकार 1.84 हेक्टेअर था।

रिपोर्ट का यह हिस्सा भूमि पर अनुसूचित जाति की 1991 में स्थिति के बारे में कहता है,

''3.19 उपलब्ध आंकड़ों के अनुसार 1990-91 में अनुसूचित जाति के पास देश में कुल क्षेत्र (area) का 8% तथा कुल जोतों का 12.6 फीसदी था। उनकी भूमि जोत का औसत आकार 0.98 हेक्टेअर था जबकि औसत आकार 1.59 हेक्टेअर था।''

तलिका–8 दिखलाती है कि जोतों की संख्या में से 1990-91 के बीच के वर्षों में अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति तथा अन्य सामाजिक समूहों की संख्या में क्रमशः वृद्धि होती गयी है जबकि औसत जोत आकार क्रमशः घटता चला गया है। इसी प्रवृत्ति को हम आगे के समय के लिए भी जारी मान सकते हैं।

तलिका–9 हमें बताती है कि अनुसूचित जाति के जोतों की सख्या में लगभग 33.7 लाख की वृद्धि हुई है और प्रचालित क्षेत्र में लगभग 16.51 लाख हेक्टेअर की वृद्धि हुई परन्तु जोत का औसत आकार 1.15 हेक्टेअर से घटकर 0.98 हेक्टेअर हो गया था।

तालिका–8

सामाजिक समूह	जोतों की संख्या (No. of Holdings) (लाख में)			परिचालित क्षेत्र (Operated area) (लाख हेक्टेअर में)			औसत भू जोत (Average land holding) (हेक्टअर में)		
	1980-81	1985-86	1990-91	1980-81	1985-86	1990-91	1980-81	1985-86	1990-91
1	2	3	4	5	6	7	8	9	10
अनुसूचित जाति	100.52 (11.3)	120.41 (12.4)	134.22 (12.6)	115.22 (7.0)	126.39 (7.7)	131.73 (8.0)	1.15	1.05	0.98
अनसूचित जनजाति	68.54 (7.7)	76.48 (7.9)	86.7 (8.1)	167.04 (10.2)	172.34 (10.5)	179.09 (10.8)			
अन्य	719.77 (81.0)	774.66 (79.7)	845.45 (79.3)	1355.71 (82.8)	1346.89 (81.8)	1344.25 (81.2)	1.88	1.74	1.59
सभी सामाजिक समूह	888.83 (100)	971.55 (100)	971.55 (100)	1637.97 (100)	1645.62 (100)	1655.07 (100)	1.84	1.69	1.55

(स्त्रोत : वही तालिका–6)

अनुसूचित जाति व अनूसूचित जनजाति की स्थिति को जोतों की संख्या और परिचालित क्षेत्र को यदि हम प्रतिशत में देखें तो वह कुल के मुकाबले लगभग स्थिर ही है। कुल जोतों और कुल परिचालित क्षेत्र का अस्सी फीसदी हिस्सा अन्य सामाजिक समूहों के पास बना हुआ है।

तालिका–9 हमारे सामने विभिन्न राज्यों सहित पूरे भारत में अनुसूचित जाति के भूमिहीनों व लगभग भूमिहीनों की तस्वीर पेश कर देती है। यह तालिका हमें बताती है कि पंजाब, केरल, बिहार और तमिलनाडु में यह संख्या काफी अधिक है और देहात के कुल ग्रामीण परिवारों में उनका प्रतिशत **90** फीसदी तक पहुंच जाता है। लेकिन इस तालिका पर गौर करते हुए यह नहीं भूलना होगा कि इस आबादी के जीवनयापन का साधन भूमि नहीं बल्कि मजदूरी है। इन्हें भूमिहीन किसान चिर्ति करना गलत है। ये असल में कृषि व गैर कृषि करने वाले मजदूर ही हैं।

तालिका–9

अनुसूचित जाति में भूमिहीन और लगभग भूमिहीन परिवारों का प्रतिशत (सकल ग्रामीण परिवार का प्रतिशत)

[(Percentage of landless and near landless households among SC's (percentage total rural households)]

राज्य	भूमिहीन	1/2 एकड़ से कम	1/2 एकड़ से एक एकड़ के बीच	1 एकड़ तक	भूमिहीन से एक एकड़ तक	भूमिहीन	1/2 एकड़ से कम	1/2 एकड़ से एक एकड़ के बीच	1 एकड़ तक	भूमिहीन से एक एकड़ तक
	1982					1992				
आन्ध्र प्रदेश	13.88	44.34	7.95	55.29	66.57	12.49	49.95	9.91	59.86	72.35
टसम	5.02	36.98	17.27	54.25	59.27	5.52	37.10	7.94	45.04	50.56
थ्बहार	35.58	69.78	9.76	79.54	89.24	19.73	62.62	6.15	68.77	88.50
गुजरात	23.86	44.69	6.38	51.22	75.06	18.09	34.11	4.22	38.88	56.42
हरियाणा	10.10	87.52	0.97	88.49	98.58	7.95	73.10	3.63	76.73	84.68
हिमांचल प्रदेश	6.01	34.71	9.96	44.69	50.76	7.09	22.69	5.37	28.04	35.13
जम्मू एवं कश्मीर	0.66	41.56	3.58	45.14	45.80	4.00	34.37	7.98	42.28	46.28
कर्नाटक	14.52	38.41	8.51	46.92	61.44	10.69	32.60	2.67	35.27	45.96
केरल	16.56	77.33	5.35	82.68	99.24	14.33	79.32	-	79.32	93.65
मध्य प्रदेश	81.11	24.21	2.55	26.76	44.87	20.53	19.04	3.17	22.21	42.74
महाराष्ट्र	26.39	33.42	3.38	36.80	63.19	24.31	32.13	2.99	35.12	59.43
उड़ीसा	7.20	47.78	6.70	54.18	61.38	11.19	49.82	9.78	59.68	70.79
प्ंजाब	6.01	56.84	2.96	89.50	95.81	6.70	85.57	1.43	87.00	93.78
राजस्थान	12.91	18.10	2.40	20.50	33.41	16.11	29.10	6.18	35.28	43.04
तमिलनाडु	14.50	61.66	7.48	69.14	83.64	1.21	57.40	9.82	67.03	86.24
उत्तर प्रदेश	7.18	40.88	18.37	59.21	66.39	6.15	45.98	16.08	62.06	68.21
पश्चिम बंगाल	19.13	42.74	11.05	53.79	72.92	12.02	47.66	11.64	59.30	71.32
भारत	12.62	47.97	9.53	57.50	70.12	13.34	47.50	8.89	56.39	69.63

स्त्रोत : वही, तालिका 7

(नोट : यह तालिका NSS 8 Land Holding Survey,1986 व 1992 पर आधारित है।)

मजदूर होने का अर्थ ही है एक ऐसा स्वतंत्र व्यक्ति जो अपनी श्रम शक्ति को बेच सकता है और उस स्थान पर न बेच पाने के कारण वह वहां से स्वतंत्रतापूर्वक वहां जा सकता है जहां उसकी श्रम शक्ति बिक सके। इसी चीज की अभिव्यक्ति हम बिहार, उड़ीसा, पूर्वी उत्तर प्रदेश की भारी आबादी को इन राज्यों से अन्य राज्यों में मजदूरी करने के लिए जाने में देख सकते हैं। बढ़ते शहरीकरण ने इस आबादी को शहरों में भी काम की तलाश में धकेला है। शहरों में अनुसूचित जाति व जनजाति का प्रतिशत पिछले दशकों में क्रमशः बढ़ता गया है।

इन बातों से स्वभावतः जो निष्कर्ष निकल कर आते हैं वह इस प्रकार हैः

(1) अनुसूचित जाति को समग्र रूप में भूमिहीन समझना गलत है। यद्यपि उसका अधिकांश हिस्सा भूमिहीन है परन्तु उन्हें किसान के रूप में चित्रित करना गलत है। वे देहात की सर्वहारा आबादी हैं और इस आबादी का शोषण किसी छोटे–बड़े सामन्त द्वारा नहीं बल्कि आधुनिक ढंग से खेती करने वाले फार्मर, धनी किसान या देहाती पूंजीपति द्वारा किया जाता है।

(2) सर्वहारा आबादी को किसी किस्म की जनवादी/समाजवादी क्रांति द्वारा आम तौर पर भूमि वितरण ऐतिहासिक व मार्क्सवादी दृष्टिकोण से प्रतिक्रियावादी कदम होगा। यह उस भारी आबादी को निम्न पूंजीपति वर्ग में तब्दील करना होगा जो पहले ही कई कारणों से ऐतिहासिक क्रम में सर्वहारा हो चुकी है। अब जाति समस्या का भूमि वितरण के जरिये समाधान खोजना काल के पहिये को पीछे घुमाना है। क्योंकि यह सम्भव नहीं है अतः यह एक किस्म का निरर्थक प्रलाप है। हां! देश के किसी क्षेत्र विशेष में क्रांति के बाद समाजवादी राज्य द्वारा भूमि वितरण की आवश्यकता बन सकती है। परन्तु यह कहां किया जायेगा इसका अधिक सटीक मूल्यांकन अखिल भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी ही कर सकती है।

(3) हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि आज भारत में सबसे बड़ा भू–स्वामी स्वयं भारतीय राज्य है। यह राज्य पूर्णतः और स्पष्टतः पूंजीवादी ढंग से संचालित है। भारतीय राज्य का भूमि पर कानूनी दृष्टि से पूर्णतः मालिकाना है और अपने मालिकाने को स्थापित और बनाये रखने के लिए वह हर निजी भूमि पर नियमित लगान वसूलता है हालांकि वर्तमान समय में तो वह नाममात्र का भी नहीं रह गया है। यह राजस्व इतना भी नहीं इकट्ठा होता कि वह राजस्व वसूलने वाले विभाग के ही खर्चे उठा सके। इस बात को यदि हम देश में सामन्ती/अर्द्ध सामन्ती लगान (श्रम लगान–वस्तु लगान–मुद्रा लगान) की प्रवृत्ति से जोड़ें तो हम पायेंगे कि अब देश में सामन्ती/अर्द्ध सामन्ती लगान वसूलने की पद्धति का मूलतः अन्त हो चुका है। जजमानी प्रथा, जातिगत पेशे पर आधारित प्रथायें समाप्तप्रायः हो चुकी हैं। भूमि सम्बन्धों में आये परिवर्तन, भले ही वे शनैः शनैः रहे हों, किसी किस्म की जनवादी क्रांति की सम्भावना को क्षीण से क्षीणतर करते चले गये हैं।

(4) जाति व्यवस्था आज मूलतः आधार का नहीं बल्कि अधिरचना का प्रश्न है। आधार में आये परिवर्तनों ने अधिरचना में भी व्यापक प्रभाव डाला है। भारतीय राज्य के द्वारा प्रशियाई किस्म के भूमि सुधार, अमेरिकी समाज की आरक्षण सम्बन्धी नीतियों के अनुसरण, राजनैतिक प्रणाली में सार्विक मताधिकार व आरक्षण की व्यवस्था, दलित व पिछड़ी जातियों में हुए सामाजिक आंदोलन तथा उनके आधार पर खड़ी हुई राजनैतिक पार्टियों की सत्ता में भागीदारी आदि ने अधिरचना में भी बड़े परिवर्तनों को जन्म दिया है। इस समस्या का समधान अब भूमि वितरण में देखना भूसे में लट्ठ चलाना है।

(5) समाजवादी क्रांति की देहात में ध्वजवाहक खेतीहर और गैर–खेतीहर सर्वहारा आबादी होगी। स्वभावतः इस आबादी का जाति के आधार पर सबसे बड़ा हिस्सा अनुसूचित जाति/जनजाति से बना होगा। समाजवादी क्रांति के अग्रदूतों को निम्न पूंजीवादी आबादी में तब्दील करने का कार्य भला कोई कम्युनिस्ट कैसे कर सकता है।

जाति और वर्ग

जाति और वर्ग के सम्बन्ध में पहले कुछ सामान्य चर्चा कर लें।

किसी वर्गीय समाज में निर्णायक चीज वर्ग होते हैं। वर्गीय संरचना के भीतर ही रखकर समाज की किसी अन्य संरचना को देखा या समझा जा सकता है। यह बात लिंग, जाति, नस्ल, राष्ट्रीयता, उत्पीड़ित धार्मिक समूहों आदि सभी पर लागू होती है। इसका उलटा करते ही हम एक ऐसे संसार में पहुंच जायेंगे जहां चीजें उल्टी लटकी दिखाई देंगी और सामाजिक सम्बन्ध अबूझ बन जायेंगे। समस्याओं का समाधान ऐतिहासिक–भौतिकवादी दृष्टिकोण के स्थान पर भाववादी दृष्टिकोण से खोजा जायेगा और अन्ततः निराशा–हताशा ही हाथ लगेगी। डा. अम्बेडकर का बौद्ध धर्म की शरण में जाना इसकी लाक्षणिक अभिव्यक्ति है।

'जाति बराबर वर्ग' का सम्बन्ध भारत के सामन्तवाद के विखण्डन के साथ भंग होता चला गया। इसकी शुरुआत औपनिवेशिक काल में भारत में पूंजीवाद के प्रवेश के साथ ही हो गई थी अब तो यह पूर्णतः भंग हो गया है। 'जाति के भीतर वर्गीय विभाजन है और वर्ग के भीतर जातीय विभाजन है' जैसे सूत्र तो उन लोगों के द्वारा भी प्रचारित किये जा रहे हैं जो भारत को मूलतः अर्द्ध सामन्ती समाज मानते हैं। ये बातें बतलाती हैं कि सच्चाई जड़ सूत्रों के पैरोकारों को भी मजबूर करती जा रही हैं कि वे उसे स्वीकारें।

जातीय संरचना के आधार के विखण्डन ने इस समस्या के समाधान के लिए ऐतिहासिक पृष्ठभूमि तैयार कर दी है। पूंजीवाद जिस काम को शनैः शनैः और जातीय उत्पीड़न–अपमान के शिकार, भारत के मेहनतकशों को लम्बे समय तक जहां कष्ट देते हुए, अपने आप खात्मे की ओर ले जायेगा वहीं समाजवादी क्रांति एक झटके में ही इसे खत्म कर देगी और क्रांति के चंद वर्षों में ही इसे इसके सभी रूपों के साथ इतिहास की वस्तु बना देगी। भारत की समाजवादी क्रांति के नेता और मुख्य आधार क्योंकि सर्वहारा वर्ग होगा अतः स्वाभाविक तौर पर वह नये समाज का शासक वर्ग होगा। किसान इस क्रांति के मुख्य संश्रयकारी होंगे। सर्वहारा वर्ग की पांतों में जातीय संरचना की दृष्टि से क्योंकि दलित, आदिवासी, पिछड़े आदि–आदि उत्पीड़ित समूह होंगे। उत्पादन के सभी साधनों पर उनके राज्य समाजवादी राज्य का कब्जा होगा अतः यह सवाल अप्रासंगिक हो जायेगा कि उत्पादन के साधनों पर किस जाति, किस लिंग, किस नस्ल के सदस्यों का कब्जा है। उनकी ये पहचानें उनकी वर्गीय पहचान के सामने धूमिल पड़ती चली जायेंगी। और इस सवाल की कोई अहमियत नहीं रह जायेगी कि समाजवाद पूर्व समाजों में उनकी स्थिति यह थी या वह थी। यह सिर्फ इतिहास के शोध का विषय होगा। यानी समाजवादी समाज के लम्बे कालखंड के चंद शुरुआती वर्षों के बाद जातीय पहचान का कोई अस्तित्व नहीं रह जायेगा। भारतीय इतिहास की यह संरचना, जिसने कभी इतिहास में खासकर सुदूर इतिहास में प्रगतिशील भूमिका निभाई थी तथा जो बाद में खासकर निकटवर्ती इतिहास में भारतीय समाज के कलंक और बोझ में तब्दील हो चुकी थी, के पूर्ण विनाश के लिए आवश्यक है कि समाजवादी क्रांति, जिसका वक्त आ चुका है, की जोर–शोर से तैयारी की जाय। जाति व्यवस्था के विनाश कि लिए आज जनवादी क्रांति की पैरोकारी वस्तुगत तौर पर वर्तमान व्यवस्था को बनाये रखने के सदृश है। इससे क्रांतिकारी सिर्पफ मनोगत तौर पर क्रांतिकारी होना ही साबित होंगे वस्तुगत तौर पर ऐसी स्थिति में क्रांति दूर की कौड़ी ही बनी रहेगी।

भारत का वस्तुगत यथार्थ यह है कि जातीय संरचना को वर्गीय संरचना ने अपने मातहत कर लिया है। आगे हम देखेंगे कि अनुसूचित जाति की बड़ी आबादी सर्वहारा वर्ग में तब्दील हो चुकी है तथा यह भी सच है कि उसका एक अति अल्प हिस्सा शासक वर्ग–पूंजीपति वर्ग, फार्मर, धनी किसान– बन चुका है। भारत के पूंजीपति वर्ग ने अपने आधार को समाज के उत्पीड़ित समूहों में विभिन्न तरीकों से फैलाया है और आज भी पैफला रहा है। भारतीय पूंजीवादी राज्य दशकों से इस नीति को अलग–अलग ढंग से अंजाम दे रहा है। आधार को विस्तृत करने, उसे सभी उत्पीड़ित समूहों में फैलाने, उनके एक हिस्से को शासक वर्ग की पांतों में शामिल करने जैसे उसके लक्ष्य में उत्पीड़ित समूहों के बीच काम करने वाले तमाम संगठन, राजनैतिक दबाव समूह और पार्टियां इस काम में उसके उपकरण–औजार साबित हो रहे हैं। इसमें शासक वर्ग की चतुराई भरी भूमिका के साथ स्वयं इन समूहों, पार्टियों की वर्गीय और वैचारिक सीमा महत्वपूर्ण रोल अदा करती है। अम्बेडकर, वी.पी. मौर्य, कांशीराम आदि–आदि सभी बुर्जुआ जनवाद और उसके राज्य की सीमाओं में कैद थे। वे इसी के अन्दर वह सब कुछ हासिल करना चाहते थे जो उत्पीड़क जातियों को हासिल था। अम्बेडकर जो कि उदारवादी–सुधारवादी बुर्जुआ थे, बुर्जुआ क्रांतियों से प्राप्त अभीष्ट को भारत में संवैधानिक प्रक्रियाओं के द्वारा हासिल करना चाहते थे। संवैधानिक प्रावधानों के जरिये दलित वर्ग की स्थिति में परिवर्तन बुर्जुआ समाज में वैसे ही हो सकते थे जैसे कि पिछले पांच–छः दशकों से हो रहे हैं। आज ये परिवर्तन बहुत स्पष्ट है और हमारे सामने, नये किस्म के कार्यभार प्रस्तुत कर रहे हैं।

इन सामान्य बातों के बाद इस बात की पड़ताल करने की आवश्यकता है कि दलित जातियों में वर्गीय संरचना में पिछले दशकों में क्या परिवर्तन आये हैं व आज वह किस तरह से विद्यमान है। यहां हम फिर अन्य उत्पीड़ित जातियों/जनजातियों के स्थान पर अपनी बातों की पुष्टि के लिए अनुसूचित जाति को ही आधार बना रहे हैं। जैसा कि हम पहले कह आये हैं कि भारतीय समाज में दलितों की स्थिति में पिछले पांच–छः दशकों में आये परिवर्तनों के पीछे आरक्षण, सार्विक मताधिकार, भूमि सुधार, सामाजिक आंदोलन आदि–आदि की भूमिका रही है। आरक्षण के कारण पिछले समय में पड़े प्रभाव के लिए अंग्रेजी अखबार 'दि इंडियन एक्सप्रेस' की इस खबर पर गौर करें।

> ''*अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति के अधिकारियों* की सरकारी नौकरियों में भारी छलांग
>
> ''आरक्षण नीति का शुक्रिया जिसकी बदौलत पिछले वर्षों में उच्च स्तर की सरकारी नौकरियों में अनु. जाति की भागीदारी में आठ गुना और अनु. जनजाति की भागीदरी में लगभग 20 गुना की वृद्धि हुई है।
>
> ''... ... 1965 की शुरुआत में सरकारी नौकरियों के ग्रुप ए में अनु. जातियों का प्रतिशत मात्र 1.64 था जो कि जनवरी 2008 में 12.5 फीसदी हो गया। अनु.जनजाति का शीर्ष सरकारी नौकरियों में प्रतिशत जो कि 1965 में केवल 0.27 था वह 2008 में बढ़कर 4.9 फीसदी हो गया।
>
> ''यहां तक कि आरक्षण ने नौकरशाही के निचले हिस्सों में इसी तरह का प्रभाव डाला है। 2008 के आंकड़े दिखलाते हैं कि 1 जनवरी 1965 को उनकी भागीदारी 13.17 फीसदी थी जो कि सभी सरकारी नौकरियों में बढ़कर 17.51 फीसदी हो गयी है।

अनु. जनजाति जो कि 1965 में 2.28 फीसदी थे अब बढ़कर 6.82 फीसदी हो गये हैं। ... ...'' 'The Indian Express,'Quantum jump in SC/ST Officers in Govt jobs, Nov 07, 2011, अनुवाद हमारा''

ग्रुप A व अन्य ग्रुपों में भी अनु. जाति की यह भागीदारी बताती है कि आज वे शासक वर्ग की नौकरशाही में अब उस स्थान पर पहुंचते जा रहे हैं जो कि देश की जनसंख्या में उनका अनुपात (2001 में 16.23% था) बैठता है। यह बातें वर्गीय संरचना के संदर्भ में काफी इशारा कर देती हैं। (तालिका–10 देखें)

तालिका–10

केन्द्र सरकार की नौकरियों में अनु. जाति की भागीदारी

	1954	1965	1974	1994	1995
I	1.18	1.64	3.2	6.92	10.12
II	2.38	2.82	4.6	10.36	12.67
III	6.95	8.88	10.3	13.98	16.15
IV	17.24 स्वीपर को हटाकर	17.75	18.8	20.2	21.26 स्वीपर को हटाकर

स्त्रोत : विकीपीडिया

अनु. जाति की ग्रुप III व ग्रुप IV में भागीदारी क्रमशः उनकी जनसंख्या के अनुरूप है। केन्द्र सरकार का उपरोक्त आंकड़ा एक प्रतिनिधिक उदाहरण है। यदि राज्य सरकारों, सार्वजनिक क्षेत्र के आंकड़े भी इसमें जोड़ लिए जायें तो हम पायेंगे कि आज दलित जातियों की सरकारी नौकरियों में भागीदारी करने वालों की संख्या लाखों में है। यह भारत के शासक वर्ग से लेकर निम्न पूंजीपति वर्ग का हिस्सा बन जाते हैं। निजी क्षेत्र में भी दलित जातियों की स्थिति में क्रमशः सुधार आया है। और आये दिन अखबारों में ऐसी सूची प्रकाशित होती रहती है कि फलाना–फलाना व्यक्ति दलित पूंजीपति है।

सूची–I

''दलितों के द्वारा चलाये जाने वाली बहुराष्ट्रीय कम्पनियां

1. जंगल एक्सपोर्ट्स, लुधियाना
–टी शर्ट एक्सपोर्ट, लंदन व मुम्बई में शो रूम
टर्न ओवर – 70 करोड़ रुपये
मालिक – मलकियत चंद

(2) गुजरात पिकर्स, अहमदाबाद
अनीका में शुगर मिल
टर्न ओवर –380 करोड़ रुपये
मालिक – रति भाई मकवाना

(3) कमानी ट्यूब्स, मुम्बई
खाड़ी देशों में तांबा इकाई
टर्न ओवर – 500 करोड़ रुपये
मालिक – कल्पना सरोज

(4) दास ऑफ श्योर इन्जीनियर्स लिमिटेड, मुम्बई
खाड़ी देशों में तेल उत्खनन कारोबार
मालिक – अशोक खण्डे

(5) इण्डो शकूरा, बैगलोर
जापान में भी कार्यरत सॉफ्रटवेयर फर्म
टर्न ओवर – 2.5 मिलियन डालर
मालिक – अतुल पासवान

(स्रोत : WWW.indianexpress.com)

इन सबके साथ दलित राजनेताओं जिन्हें आरक्षण का लाभ मिला है को जोड़ लिया जाय तो हम पायेंगे कि दलित जातियों में एक अल्प हिस्सा आज शासक वर्ग की पांतों में शामिल है और यही स्थिति उसकी निम्न पूंजीपति वर्ग में भी बनती है।

इन सारे तथ्यों के बावजूद मुख्य बात यह है कि उसका बड़ा हिस्सा शहर और देहात में मजदूर वर्ग का हिस्सा है।

अनुसूचित जाति के ग्रामीण व शहरी इलाकों में व्यवसायिक पैटर्न को तालिका –11 में दिखाया गया है,

तालिका–11

अनुसूचित जाति व अन्य का व्यवसायिक पैटर्न (प्रतिशत में)

Occupational pattern-Scheduled caste and other (in Per.)

कृषि में स्व–रोजगार	18.90	43.30	19.12	42.42
गैर– कृषि में स्वरोजगार	11.00	13.80	10.32	13.89
स्वरोजगार (कुल)	29.80	57.10	29.49	56.31

कृषि वेतन भोगी मजदूर	51.70	23.20	50.60	22.37
गैर–कृषि वेतन भोगी मजदूर	11.40	9.70	10.22	6.67
कुल ग्रामीण वेतन भोगी मजदूर	63.10	31.10	60.28	29.14
अन्य	06.90	11.50	9.67	14.62
शहर				
स्व–रोजगार	28.00	35.20	24.08	35.02
नियमित मजदूरी / तनख्वाह	39.40	45.00	39.27	43.11
केजुअल लेबर	8.50	09.20	9.67	11.25
सभी	1000.00	100.00	100.00	100.00

नोट : अन्य = गैर अनुसूचित जाति / जनजाति स्त्रोत : वही, तालिका–8

तालिका–11 स्पष्ट कर देती है कि ग्रामीण क्षेत्र में अनुसूचित जाति में सबसे बड़ा हिस्सा कृषि वेतनभोगी मजदूरों का है। 'अन्य' में यह हिस्सा काफी छोटा है। इस बात का अर्थ है कि अनुसूचित जाति का बड़ा हिस्सा खेत मजदूरों से मिलकर बना है। इसी तरह शहरों में भी बड़ा हिस्सा नियमित मजदूरी या वेतन प्राप्त करने वालों का है। 1987-88 से लेकर 1993-94 में अनुसूचित जाति तथा 'अन्य' के व्यवयासिक पैटर्न में कोई खास परिवर्तन नहीं आये। कमोबेश अनुपात वैसा ही बना रहा है।

भारत के देहाती क्षेत्र में आने वाले परिवर्तनों की एक समग्र तस्वीर तालिका–12 पेश करती है। 1951 से 2001 के बीच आये ये परिवर्तन कुछ मामलों में तो काफी बड़े किस्म के हैं। जैसे 1951 से 2001 के बीच जोतदार व कृषि मजदूरों की स्थिति में आये परिवर्तन को देखा जाय। 2001 आते–आते यह अनुपात (54:45) का हो गया है जबकि 1957 में यह (72:28) का था। ग्रामीण क्षेत्रों में बढ़ता वर्गीय विभाजन जाहिर सी बात है वर्गीय ध्रुवीकरण की जमीन तैयार करता चला जायेगा। इन्हीं वर्षों में ग्रामीण आबादी का प्रतिशत शहरी आबादी के मुकाबले गिरता चला गया है। कृषि मजदूरों की संख्या में सापेक्षतः ही नहीं बल्कि निरपेक्षतः भी वृद्धि हुई है। कृषि मजदूरों का बढ़ना और कृषकों का घटना कृषि के बढ़ते पूंजीवादीकरण की निशानी है।

तालिका–12

जनसंख्या और कृषि कामगार (दस लाख में)

(Population and Agricultural worker)

वर्ष	कुल जनसंख्या	औसत वार्षिक वृद्धि दर (%)	ग्रामीण जनसंख्या	कृषि कामगार		
				कृषक cultivators	कृषि मजदूर Agricultural labours	कुल
1	2	3	4	5	6	7
1951	361.1	1.25	298.6 (82.7)	69.9 (71.9)	27.3 (28.1)	97.2 (100)
1961	439.2	1.96	360.3 (82.0)	99.6 (76.0)	31.5 (24.0)	131.1 (100)
1971	548.2	2.22	439.0 (80.1)	78.2 (62.2)	47.5 (37.8)	125.7 (100)
1981	683.3	2.2	523 (76.7)	92.5 (62.5)	55.5 (37.5)	148.0 (100)
1991	846.4	2.14	628 (74.3)	110.7 (59.7)	74.6 (40.3)	185.3 (100)
2001	1028.7	1.95	742.6 (72.2)	127.3 (54.4)	106.8 (45.6)	234.1 (100)

(स्त्रोत : Table 2.2, page-3, Agriculture stat -2008)

उपरोक्त तालिका की तुलना यदि हम तालिका–13 और तालिका–14 से करें तो हमारे सामने अनु0 जाति के व्यवसायिक वर्गीकरण की एक ऐसी बदलती तस्वीर सामने आती है जिसके अनुसार ग्रामीण आबादी में बढ़ते सर्वहाराकरण के अनुरूप ही अनु. जाति में

सर्वहाराकरण बढ़ता जा रहा है। तालिका–14 बताती है कि 1961 में अनु.जाति के जोतदारों का हिस्सा 37.76 फीसदी था जो कि 1991 में घटकर 25.44 फीसदी और 2001 में तो यह घटकर 22.08 ही रह गया।

तालिका–13

अनुसूचित जाति का व्यवसायिक वर्गीकरण

(Occupational classification of scheduled castes)

1961			1991		
सामान्य	अनु. जाति	अनु. जनजाति	सामान्य	अनु. जाति	अनु. जनजाति
52.78	37.76	68.18	39.74	25.44	54.5
16.71	34.48	19.71	19.66	49.06	32.69
6.36	6.56	2.47	2.56	2.41	1.04
24.13	21.2	9.64	38.04	23.08	11.76

स्त्रोत : वही, तालिका–2, अनुसूचित जाति आयोग की रिपोर्ट

तालिका–13 व तालिका–14 में कृषि मजदूरों के संदर्भ में देखें तो उनका प्रतिशत लगातार बढ़ता चला गया है। यही स्थिति हमें अन्य मजदूरों के अनुपात के संदर्भ में भी मिलेगी। अनुसूचित जनजाति के सदस्यों की भी स्थिति ऐसी है। 1961 से 1991 में अनुसूचित जनजाति में कृषकों की संख्या में कमी तथा कृषि मजदूरों की संख्या में भारी वृद्धि हुई है।

इन बातों की तुलना यदि हम गरीबी की आंकड़ों से करें तो हम पायेंगे कि भारत में खेत मजदूरों की स्थिति भयावह है।

तालिका–14

श्रेणी	कुल		अनुसूचित जाति	
	1991	2001	1991	2001
कृषक (cultivators)	39.74	33.11	25.44	22.08
कृषि मजदूर	19.66	20.29	49.06	39.16
परिवारिक उद्योग (Household Industry)	2.56	3.9	2.41	3.71
अन्य मजदूर	38.04	42.7	23.08	35.05

स्त्रोत : वही, तालिका–3

हम जानते हैं कि भारत में अनुसूचित जाति की सबसे अधिक आबादी उत्तरप्रदेश में निवास करती है। उत्तर प्रदेश की पांच प्रमुख जातियों की स्थिति को तालिका–15 दिखलाती है। बाल्मिकी जाति को छोड़कर अन्य जातियों में कृषकों की

तालिका–15

चार आर्थिक रेणियों में कामगारों का बंटवार

(Percentage distribution of workers under four Economic Catagories)

आर्थिक श्रेणी	कुल अनु. जातियां	चमार	पासी	धोबी	कोरी	बाल्मिकी
कृषक	30.9	29.6	42.8	36.2	29	10.3
कृषि मजदूर	42.4	44.5	43.2	30.7	43.7	27.6
घरेलू उद्योग	4.3	3.4	2.4	9.6	4.9	4.6
अन्य मजदूर	22.2	22.4	11.6	23.6	22.4	57.4

स्त्रोत : जनगणना 2001

संख्या एक तिहाई के करीब है। जहां कृषि मजदूरों की संख्या बाल्मिकी जाति में सबसे कम है वहां अन्य मजदूरों में उनकी संख्या 60 फीसदी तक पहुंच जाती है। कुल मिलाकर चमार, पासी, धोबी व कोरी की बहुलांश आबादी या तो कृषि मजदूर या अन्य मजदूर है। उत्तर प्रदेश की दलित जातियों की यह स्थिति हमारे सामने एक तरह से पूरे भारत के अनुसूचित जातियों की स्थिति रख देती है।

उपरोक्त तथ्यों और बातों के आधार पर कुछ निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं।

(1) भारत की जातीय संरचना निरंतर विखण्डित होती गयी है और विभिन्न जातीय समूह विखण्डित होकर आधुनिक पूंजीवादी समाज के विभिन्न वर्गों में शामिल होते गये हैं।

(2) शहर और देहात दोनों ही स्थानों पर ऐसे लोगों की संख्या लगातार बढ़ती जा रही है जो मजदूरी करके ही अपना या अपने परिवार का जीवनयापन करते हैं।

(3) देहाती क्षेत्र में जोतदारों की संख्या में आता परिवर्तन दिखला रहा है कि ऐसे लोगों की संख्या घट रही है जो या तो जमीन के मालिक थे या फिर दूसरे से जमीन लेकर खेती करते थे।

(4) निर्णायक तौर पर आज यह कहा जा सकता है कि भारत किसान प्रधान देश से मजदूर प्रधान देश में तब्दील हो चुका है। यह बात क्रांति की मंजिल निर्धारण में बुनियादी बात बन जाती है। इस आबादी का देहात में बहुलांश हिस्सा अनुसूचित जाति व जनजाति से आता है। और यह वर्ग शहरी औद्योगिक सर्वहारा वर्ग के नेतृत्व में होने वाली समाजवादी क्रांति की देहात में अगुवाई करेगा। भारत के विशाल देहाती क्षेत्र में समाजवादी क्रांति को आगे बढ़ाने, सर्वहारा की सत्ता को टिकाये रखने, उत्पादन के साधनों पर कब्जा करने और उसे बरकरार रखने में इसकी भूमिका निर्णायक होगी। यही आबादी भारत की कम्युनिस्ट पार्टी का देहाती क्षेत्र में मुख्य आधार होगी। इसी के नेतृत्व में देहातों में समाजवादी क्रांति सहकारीकरण से समाजीकरण की यात्रा पूरी करेगी। खेत मजदूरों को किसान बनाने का प्रस्ताव एक प्रतिगामी प्रस्ताव है। यहां जैसा कि हम पहले कह आये हैं कि हो सकता है कि भावी समाजवादी राज्य देश के कुछ अति पिछड़े इलाकों में जहां प्राक् पूंजीवादी उत्पादन सम्बंधों के अवशेषों की बहुलता हो, भूमि वितरण की क्षेत्र विशेष में समय विशेष के लिए कोई नीति निर्धारित करे। यह नीति भी उस क्षेत्र में लोगों की पहलकदमी खोलने, उत्पादन शक्तियों के विकास आदि के मद्देनजर ली जा सकती है परन्तु इस नीति का निर्धारण (पूरे देश में कहां और कैसे करना होगा) एक अखिल भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी ही कर सकती है।

लेख के अंत में यदि हम इस लेख में प्रस्तुत तथ्यों और तर्कों की ही रोशनी में देखें तो' 'जाति–जमीन–जनवाद' के संदर्भ में हमारे आंदोलन में जो बातें प्रस्तुत की जा रही हैं वे प्रथमतः तो देश के मौजूदा यथार्थ से बेमेल हैं तथा उनके पीछे जो धारणायें हैं वे मार्क्सवादी दृष्टिकोण से गलत हैं।

जनवाद के विषय में उन्नीसवीं बीसवीं सदी के अनुभवों को भुलाकर इक्कीसवीं सदी में वर्गेतर दृष्टि से बातें रखना बेहद खतरनाक है। यह सर्वहारा की पांतों में जहरीले विचारों को प्रश्रय देना है। लेख में उद्धृत लेनिन की बातों से सुस्पष्ट है कि हमें जनवाद के सवाल पर वर्गेतर दृष्टि से बात नहीं करनी चाहिए। 'शुद्ध', 'सच्चा' 'मुकम्मिल' जनवाद जैसी बातें निरर्थक हैं और एक वर्गीय समाज में जनवाद का सवाल तानाशाही से अभिन्न रूप से जुड़ा है। पश्चिमी बुर्जुआ समाज में मौजूद जनवाद को महिमामण्डित करना और उसे भारतीय समाज के लिए किसी भी वक्त के लिए आदर्श बताना जनवाद के सवाल पर मार्क्सवादी–लेनिनवादी दृष्टिकोण से विचलन का परिचायक है।

आज भारत में 'भूमि क्रांति' की बातें करना और उसके आधार पर जनवाद की समस्या का समाधान खोजना यह भारतीय समाज की मौजूदा विकास की अवस्था, वर्गीय संरचना से बेमेल है। 'भूमि क्रांति' का दौर भारत में काफी समय पहले ही बीत चुका है। भूमि की मांग को लेकर होने वाले आंदोलन भारत में कई दशक पहले ही समाप्त हो चुके हैं। हाल के दशकों में तो भूमि या 'जमीन जोतने वाले की' की मांग को लेकर कोई प्रभावी या जुझारू आंदोलन हुआ ही नहीं है। इसके उलट ऐसे कई जुझारू आंदोलन हुए हैं जो किसानों, आदिवासियों आदि की भूमि पर राज्य या निजी पूंजीपति द्वारा जबरदस्ती कब्जे या जमीन के कम मुआवजे दिये जाने के खिलाफ रहे हैं। हरियाणा, पंजाब, उत्तर प्रदेश, महाराष्ट्र, पश्चिम बंगाल, झारखण्ड, उड़ीसा, छत्तीसगढ़, आदि राज्यों में पिछले एक दशक में भूमि के सवाल पर हुए आंदोलनों का चरित्र अपने आप में यह बतलाने के लिए पर्याप्त है कि 'भूमि क्रांति' का नारा कितना अप्रासंगिक हो चुका है। यहां भूमि प्राप्त करने का नहीं भूमि छीने जाने का या भूमि का बाजार के हिसाब से कम कीमत दिये जाने का विरोध हो रहा है। वर्तमान समाज में जब 'भूमि की मांग' को लेकर कोई आंदोलन न हो तब भावी समाजवादी राज्य द्वारा भूमि वितरण की बात करना दिखलाता है कि हमारे देश के कुछ क्रांतिकारियों का दिमाग भूमि के तिलिस्म में फंस चुका है। वे ऐसा करके अपने को सर्वहारा का प्रतिनिधि नहीं बल्कि टुटपुंजिया जनवाद का प्रवक्ता साबित कर रहे हैं।

जाति और जमीन के बीच प्रचारित किये जाने वाला सम्बंध पिछले एक–दो सदी में लगातार भंग होने की ओर बढ़ता चला और आज तो यह पूर्णतः भंग हो चुका है। इस सम्बंध के भंग होने की औपचारिक शुरुआत तो लार्ड कार्नवालिस के 1792 के भूमि व्यवस्था (जमींदारी, रैयतवाड़ी, महालवाड़ी) के साथ हो गई थी। औपनिवशिक काल में बढ़ते बाजार, मुद्रा के प्रचलन आदि ने इसे अर्द्ध सामंती स्वरूप प्रदान किया था। आजादी के बाद भारतीय राज्य ने इस सम्बंध को गैर क्रांतिकारी प्रक्रियाओं से और अधिक भंगुरता प्रदान कर दी। जमींदारी उन्मूलन, हदबंदी कानून, आधा–अधूरा भूमि वितरण, कृषि के पूंजीवादीकरण आदि आदि प्रक्रियाओं के साथ राज्य के आरक्षण आदि कदमों ने इस सम्बंध को निर्णायक तौर पर भंग कर दिया। जातीय संरचना का आर्थिक आधार नष्ट होने की इस ऐतिहासिक प्रक्रिया में भले ही लम्बा कालखण्ड लगा हो, इसने उत्पीड़ित जातियों को अपार कष्ट दुःख पहुंचाया हो परन्तु आज सच्चाई यही है कि जातीय संरचना को आधार प्रदान करने वाली चीजें यथा जजमानी प्रथा, जाति आधारित पेशे, भूमि पर सर्वणों का एकाधिकार, सामंती अर्द्ध सामंती किस्म की भूमि और लगान व्यवस्था, स्वतंत्र मजदूरों का अभाव आदि, आदि खत्म हो चुकी हैं या होती जा रही हैं। लेख में प्रस्तुत तथ्यों व तर्कों से सुस्पष्ट है कि दलित जातियों में भी वर्गीय विभाजन बढ़ता गया है और जाति बराबर वर्ग का सूत्रीकरण बेमानी हो चुका है। ऐसे में जाति–जमीन–जनवाद का जुमला उछालना या सामंतवाद बनाम भारतीय जनता के अंतर्विरोध को बुनियादी अंतर्विरोध बताना वैचारिक दिवालियेपन की निशानी है।